पिर
नौका
वी.एम. इनामदार
९.३
अनुवाद-
बी.आर नारायण

अनु० बी० आर० नारायण
वी० एम० इनामदार

वी० एम० इनामदार

जन्म : १-१०-१९१२, जन्म स्थान–हुडली ग्राम, जिला–बेलगाँव ।

कन्नड़ और अंग्रेजी के विद्वान । आजकल अध्ययन से निवृत्त होकर लेखन-कार्य में लिप्त । उच्चकोटि के आलोचक, उपन्यासकार तथा अनुवादक 'बिडुगडे' नाटक कर्नाटक सरकार द्वारा पुरस्कृत । लगभग २० उपन्यासों के प्रणेता । आपकी डा० शिवराम कारे की जीवनी तथा मराठी से खांडेकर के ययाति का कन्नड़ अनुवाद विशेष चर्चित ।

मयूर नौका कन्नड़ के प्रसिद्ध उपन्यास 'नाविल नौके' का जीवन्त हिन्दी अनुवाद हिन्दी के प्रख्यात विद्वान् श्री बी० आर० नारायण ने किया है ।

सम्पर्क सूत्र :
लेखक–
४०६/बी ३ मेन, सरस्वतीपूरम्
मैसूर ५७०००६
अनुवादक–
१५-ए/२५, डब्लू० ई० ए०
करोल बाग, नई दिल्ली

प्रचारक बुक क्लब
हिन्दी प्रचारक संस्थानं
पो० बा० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१
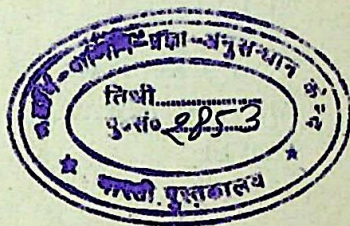
अनु० बी० आर० नारायण
वी० एम० इनामदार

भारत के प्रथम बुक क्लब
प्रचारक बुक क्लब,
हिन्दी प्रचारक संस्थान
पो० बा० ११०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१००१ के लिए
विजय प्रकाश बेरी द्वारा प्रकाशित तथा
बेला प्रिंटिंग प्रेस, वाराणसी में मुद्रित
सन् १९८४

V. M. INAMDAR
MAYUR NAWAKA
NOVEL
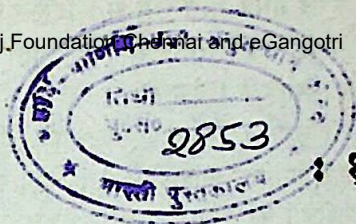
चिक्कमगलूर सब-डिवीजन में बदली होकर आने के बाद इधर अट्ठारह महीनों से अरविंद का दुःख कुछ कम होने लगा था। कम से कम बाहरसे तो ऐसा ही लगता था। उसके मानसिक दुःख का कारण उसकी अपनी पत्नी की मृत्यु का न भूल पाना था। तीन वर्ष पहले अकस्मात् एक चाँदनी रात में शारदा उसे सदा के लिये छोड़कर चली गयी थी। व्यावहारिक दृष्टि से कह सकते हैं कि वह एक वज्राघात था पर अरविंद के लिये तो वह साक्षात् वज्राघात ही था। कई बार वह कहता, "मृत्यु एक न एक दिन सबको आनी है। वह कोई बड़ी बात तो नहीं है; वह एक साधारण बात है। पर वह इस प्रकार, एकदम से चली गयी। इसका मतलब क्या है? समझ में ही नहीं आता। एक दिन भी बीमार नहीं पड़ी। कोई मानसिक पीड़ा तक नहीं थी, ऐसे में चले जाने का मतलब? इसमें कोई ईश्वरीय न्याय दिखाई नहीं देता। कुछ समझ में नहीं आता। यही कहना ही सत्य है। इस विचार से जो दुख होता है वह उसको खो देने से भी अधिक दुखदायक है। एक दुःख को तो सहा जा सकता है पर दूसरे का सहना बड़ा कठिन है।"

यह दूसरा विचार ही उसके दुःख का मूल कारण था। उसके मन को सदा दुःख देता रहता था। वह ऐसे प्रश्नों को जन्म देता जिनका कोई उत्तर नहीं मिलता था। वह सात वर्ष पहले उसकी होकर आयी, चार साल में उसके अधिक से अधिक समीप आई। दो जीव एक हो गये थे। ऐसे में उसका चला जाना ऐसा लगा मानो हाथ में लेकर किसी सौंदर्य की मूर्ति का

रसास्वादन करते समय मूर्ति हाथ से छिटक कर चूर-चूर हो जाए। उसके बारे में ज्यों-ज्यों सोचता त्यों-त्यों ऐसा लगता कि उसे फिर से देख न पाना कितना बड़ा दुर्भाग्य है। एक दिन स्वप्न में भी नहीं आती है। उसको छीन ले जाने वाली मृत्यु क्या उसके स्वप्न को भी रोक सकती है? मृत्यु का साम्राज्य कहाँ से कहाँ तक फैला है? ऐसा लगता है कि मृत्यु की काली छाया सारे जीवन पर व्याप्त है। वह कहाँ गयी? अब कहाँ होगी? ऐसे प्रश्नों का कोई अर्थ नहीं है। ऐसा समझने पर भी वह उन्हीं प्रश्नों में ऊलझे बिना न रह सकता था। वह हर जगह पर उसे खोजता था। उसे देखने की इच्छा बलवती थी।

पिताजी बड़े बेटे श्रीपति के पास रहते थे। इसकी चिक्कमगलूर बदली हुयी तब उन्होंने जो कहा था वह सदा इसके कानों में गूँजता था। उन्होंने कहा था, "देखो बेटा, जो अनहोनी थी सो हो गयी। अब तुम्हारा रोना बेकार है। उसी को मन में रखकर कितने दिन तक यूँ रोते रहोगे। बिना भूले क्या मनुष्य जिंदा रह सकता है? इतने दिन तक तुम दोनों यहाँ थे। अब अकेले रहना पड़ेगा। मन की चिंता और बढ़ेगी। तुम्हारे लिए किसी बात की कमी नहीं है। अच्छा वेतन है, अधिकार है। हर प्रकार की सुविधा है। तुम्हें अपने मन के दुःख को दूर करना ही पड़ेगा। मैं और क्या कह सकता हूँ?" यह कहते समय दिल भर आने से उन्होंने आगे कुछ कहने से अपने को रोक लिया था। उनका अभिप्राय स्पष्ट था। दो-चार अच्छे परिवार की कन्याओं के पिता आये भी थे। शारदा के पिता नागेशराय, शारदा की बहिन वाणी को देने के लिए कहते ही रहे। यदि अरविंद मान लेता तो उसके जीवन का रंग ही बदल जाता पर उसका ध्यान उस तरफ जाता ही नहीं था। शारदा का स्थान कोई और ले, यह कैसे संभव है? कैसा पागलपन? कहते हुए वह चुप हो जाता। शारदा के बारे में उसकी अनुरक्ति कितनी है। यह किसी अन्य के लिए समझना संभव ही नहीं था। चार वर्ष के वैवाहिक जीवन में 'वह उसके जीवन की साँस बन गई थी' यह

वात उत्प्रेक्षा-सी लग सकती है । परंतु उनके संबंध को निरूपण करने के लिए दूसरे शब्द नहीं हैं । क्या किया जाय ? इसीलिए अरविंद उसके बारे में अधिक वात नहीं करता था । वह कहता था कि उसे वताने के लिए उसके पास शब्द नहीं हैं । और कहने से भी क्या लाभ ? जिसे वह स्वयं वता नहीं सकता था उसे दूसरे कैसे वता सकते हैं ?

एक योग्य अधिकरी के रूप में नाम कमाने के कारण अरविंद का चिक्कमगलूर तबादला हुआ । यह उसके लिए अच्छा ही रहा । उसे वहाँ भेजते समय उच्च अधिकारी ने जरा संकोच से ही कहा था, "देखिए; वहाँ कोई भी जाना नहीं चाहता । दवाव के कारण जो चले भी जाते हैं वे वहाँ पहुँचने के दिन से ही लौटने की फिराक में रहते हैं । इसीलिए वहाँ के काम वैसे के वैसे ही पड़े रह गये हैं । आपको जान-बूझकर भेजा जा रहा है । आपको कष्ट तो होगा । परंतु आप जैसे लोग जब तक वहाँ नहीं जायेंगे तब तक वहाँ की जमीनों की कुछ समस्याएँ सुलझेंगी ही नहीं । कई मामले वैसे ही पड़े हैं ।" उस अधिकारी को इस काम के लिए अरविन्द अत्यन्त उपयुक्त लगा था । अरविंद का भी दृढ़ विश्वास था कि काम को अपने जिम्मे लेने के बाद ऐसी जगह चाहिए, वैसी जगह चाहिए आदि नहीं कहना चाहिए । अपनी आठ वर्ष की सेवावधि में उसने एक दिन भी आनाकानी नहीं की थी । जहाँ तवादला हुआ वहाँ वह गया । जब तक दूसरी जगह तवादला नहीं होता, वह वहीं रहता । उसके लिए यह एक निष्ठा का प्रश्न था, एक अनुशासन का प्रश्न था । वह सदा कहता कि इस बारे में सोचना ही नहीं चाहिए ।

वेंगलूर के मुख्यालय में दो वर्ष तक कार्य करके वह अपने काम से ऊब सा गया था क्योंकि वहाँ बाहर जाने का कोई मौका नहीं मिलता था । इससे पहले जब वह शिवमोग्गा में सब-डिवीजनल अधिकारी था तब के दिन उसके लिए एक स्वप्न के समान थे । वे शारदा से विवाह के बाद शुरू-शुरू के दिन थे । दौरे में वह उसे साथ ले जाता और उसके साथ प्रकृति का और

उसके सहवास का आनन्द लिया करता। मैदान और पहाड़ों का सौन्दर्य

देखकर प्रसन्न होने में, विविध प्रकार के रंगों के आनन्द लेने में, निसर्ग के सैकड़ों विन्यासों को अपनी आँखों से देखने में उसका मन कभी नहीं भरता था। अतः बेंगलूर में दो वर्ष तक यांत्रिक जीवन बिताने के बाद चिक्कमगलूर जैसे सुन्दर प्राकृतिक प्रदेश में तबादला होकर जाने का मौका आना उसके लिए एक वरदान-सा था। बचपन में उसे जंगल रहस्यपूर्ण लगा करता था। मैदान के पीछे एकांत में सृष्टि का रहस्य छिपा है। कितने प्रकार के रंग, कितने प्रकार के हरे-हरे पत्ते, कितने प्रकार के फूल। घंटों आकाश के रंगों को देखकर प्रसन्न हो सकते हैं। इसीलिए दौरे पर जाते समय उसे ऐसा लगता मानो मनोरंजक यात्रा पर जा रहा हो। और शारदा साथ रहती तो कहना ही क्या था। ऊबकर जब वह घर में रह जाती और वह अकेला ही जाता; तब भी जमीन, पानी, हवा, प्रकाश, हिम, फूल, घास सदा उसके मन को आकर्षित करते।

शिवमोग्गा में रहते एक दिन दौरे पर जाते समय शारदा से पूछा था, दौरे तुम्हें बुरे क्यों लगते हैं? साथ क्यों नहीं चलती?

'मुझे जाकर वहाँ क्या करना है? आपको तो दिन-रात आफिस का काम लगा रहता है।'

'यह झूठ है; काम तो बस दिन में......... ।''

'इतना तो मानते हैं न? साथ चलकर सारा दिन मुझे क्या करना है?'

'क्या करना है? इस बार भंडगद्दे के पास कैंप है। वहाँ नदी के किनारे सैकड़ों रंगों के पक्षी देखे जा सकते हैं। इस समय पक्षी दूर-दूर से आते हैं।

'ठीक है, आपका तो यह एक पागलपन है, गत वर्ष नहीं देखे थे।'

'तो तुमने कल खाना खाया था फिर आज क्यों खाती हो?'

'क्या दोनों एक ही बात है?'

'अवश्य।'

'आपको कभी भी काम से बोरियत नहीं होती ?'

'जिससे विवाह किया उससे बोर होने से कैसे चलेगा ?'

'मैं पत्नी की बात नहीं कह रही हूँ; काम की बात कह रही हूँ।'

'जानता हूँ भई, जानता हूँ।'

'जानते नहीं, इसीलिए ऐसा कह रहे हैं।'

'तुम्हें ही नहीं मालूम है ?'

'क्या मालूम नहीं है ?'

'तुमसे पहले मैंने एक और से विवाह कर लिया था।'

यदि इस बात को अरविंद जोर से हँसकर नहीं कहता तो पता नहीं शारदा की मानसिक स्थिति कैसी हो जाती। उसकी बात के लहजे को समझकर शारदा ने पूछा।

'ऐसा लगता है कि आपको उसीसे अधिक प्रेम है।'

'क्यों न हो ? आखिर वह पहले जो आई है।'

'ऐसा नहीं होना चाहिए। वह लोक के विरोध में है ? बाद में आने वाली छोटी होती है, उससे ज्यादा प्रेम होना चाहिए।'

'तो यह बात है ? मुझे मालूम नहीं था।'

'सब मालूम है, आपका यह सब बहाना है। उसके बारे में आपने एक बात भी मुझसे नहीं की। पति-पत्नी के बीच में ऐसा छिपाव नहीं होना चाहिए, समझे !'

'तुम्हें इसलिए नहीं बताया, कहीं तुम्हें बुरा न लगे।'

'जाने दीजिए। कम से कम उसका नाम तो बता देना चाहिए था या उसके लिए भी शर्म आती है।'

'उसका नाम बताने में तो शरम नहीं है।'

'तो बताइए।'

'क्या ?'

'आपकी पहली प्रेयसी का नाम।'

'प्रेयसी नहीं, विवाहिता पत्नी।'

'जो भी सही, उसका नाम?'

'दफ्तर का काम। तुमसे पहले उसने मुझे पकड़ लिया था।'

'भूत के समान।'

'तुम देवी के समान पकड़ लेती हो।'

'बस, रहने दीजिए।'

ऐसे प्रसंग शारदा को उसके और भी समीप लाते थे। परंतु उससे उसके काम में कोई बाधा नहीं पड़ती थी। वह उसके स्वभाव का एक विशेष गुण ही कहना चाहिए। आठ वर्ष पूर्व प्रांतीय लोक सेवा आयोग से उसका चुनाव हुआ था। उसे स्वीकार करके प्रशिक्षण के लिए जाते समय उसके प्रिय मित्र सेतुराम ने कहा था: 'देखो नौकरी तो बहुत अच्छी है। सौभाग्य से मिली है पर पता नहीं कि वह तुम्हें कैसे पसंद आएगी। उसमें तुम्हारे दिवा-स्वप्नों के लिए कोई अवकाश ही नहीं है।' उस पर अरविंद ने कहा था, 'ऐसा कहने की जरूरत ही नहीं है। यदि मुझमें यह भरोसा नहीं होता कि वह काम मुझसे न होगा तो मैं उसे स्वीकार ही नहीं करता। मेरे दिवा-स्वप्न मेरे अंतरमन से संबंधित हैं। मेरी भावनाओं से संबंधित हैं। काम और भावनाओं से कोई सीधा संबंध नहीं होता है। वह बाह्य व्यापार होता है। मेरा भीतरी मन उससे उलझेगा नहीं। अधिकारी कोई और है, मैं कोई और हूँ।' तब मित्र के यह पूछने पर 'ऐसा अलग करना संभव है?' इसने कहा था 'क्यों नहीं होना चाहिए? ऐसा रहने में ही भलाई है।' उसने वह बात केवल जबानी ही नहीं कही थी अपितु वैसा किया भी था।

: २ :

चिक्कमगलूर आकर उसे अकेले ही रहना पड़ा। शुरू-शुरू में बहुत ऊब होती थी पर कुछ ही दिनों में वह अभ्यस्त हो गया। दौरे पर रहते हुए कोई ऊब नहीं होती थी। शहर में रहते समय पुराने कागजातों को एक ढंग पर लाने में लगा रहता। उसका अपने काम के प्रति लगाव देखकर दफ्तर में बाबुओं को चिढ़-सी होने लगी थी। 'इसे क्या, जोरू न जाँता, अल्ला मियाँ से नाता।' इस छड़े को केवल काम ही दिखाई देता है' आदि स्वर उसके कानों में पड़ते। एक-दो अपना तबादला करा के चले भी गये। परंतु उसके काम की सुव्यवस्था यदि किसी को अच्छी भी लगी तो अरविंद के दफ्तर के मुख्य क्लर्क वेंकटरामय्या को। उन्होंने कहना शुरू कर दिया था कि अफसर हो तो ऐसा होना चाहिए। ऐसे लोगों के अधीन काम करने में एक प्रकार का संतोष होता है। उसके काम से वे काफी प्रभावित थे। वे आयु और अनुभव में बुजुर्ग होने पर भी बिना किसी प्रकार के घमंड के, अपने बड़प्पन न दिखाते हुए, मिलजुल कर काम कर रहे थे। अतः वे अरविंद के भी प्रिय थे। उसे विश्वास हो गया था कि वह उन पर जो भरोसा रखता है उसका वे दुरुपयोग नहीं करेंगे। दोनों में एक प्रकार का विश्वास बढ़ गया था। आफिस के इस संबंध और उनकी सहृदयता की भावना ने अरविंद के एकांत जीवन में एक तसल्ली उत्पन्न कर दी थी। वेंकटरामय्या अरविंद के लिए कई तरह से उसके अपने थे; आत्मीय थे।

'अगले सप्ताह 'बागूर' में कैंप है न, उसका प्रबंध हो गया है?'

'अगले सप्ताह न रखिये, सर।'

अरविंद उनसे बार-बार कहता कि वे उसे 'सर' संबोधित न करें। पर वह वेंकटरामय्या की आदत-सी हो गई थी।

'फिर आपने सर कहा।'

'कोई बात नहीं साहब।'

'आप के लिये नहीं पर मेरे लिये है। आप बुजुर्ग हैं।'

'क्या पहले जन्म लेने भर से ही.........।'

'इसके लिए या किसी और वजह से। खैर। दौरे का क्या हुआ?'

'अगले सप्ताह घर में कुछ काम है। मैं चल नहीं सकता। और किसी को ले जाना चाहें तो प्रबंध कर देता हूँ।'

'उसकी जरूरत नहीं। आपके बिना बागूर जाना संभव नहीं है। एक सप्ताह के बाद ही प्रबंध कीजिये। तभी चलेंगे। उस जगह के स्वामित्व का झगड़ा बड़ा उलझा हुआ है। आप न चलेंगे तो निबटेगा ही नहीं।

'पंद्रह दिन के बाद चलेंगे। वहाँ के पटवारी मुझसे परिचित हैं। कल ही खबर भेजता हूँ। वह बड़ा सुन्दर प्रदेश है। एक दिन वहाँ ठहरकर आस-पास की जगहें देखी जा सकती हैं।'

'ठीक है, ऐसा ही कीजिये।' कहकर अरविंद अपने काम में लग गया। वेंकटरामय्या चलने को ही थे।'उतने में अरविंद को कोई बात याद हो आई। उसने पुकारा,

'वेंकटरामय्या।'

'सर।'

'देखिये, फिर वही बात......।'

'जाने दीजिये। यह एक आदत-सी हो गई है। आसानी से छूटेगी नहीं, इसलिए छोड़ दीजिए। बेकार का प्रयोग है।'

'हाँ, मैं कहना चाहता था कि उस बागूर से 'आगुंबे' कितना दूर है?'

'आगुंबे? वह कम से कम सोलह-अट्ठारह मील दूर तो होगा ही।'

'इतनी दूर है?'

'जी हाँ? बागूर तो तलहटी में है। पहाड़ी दर्रे के रास्ते चलें तो 'कोप्पा'

तक आठ मील होते हैं। आगे फिर कम से कम नौ मील का रास्ता और है।'

'कुछ भी हो एक शाम हमें आगुंबे जरूर जाना है।

'रात को कैसे लौटेंगे।'

'लौटने की क्या जरूरत है? रात को वहीं ठहरेंगे। सुंदर डाक बंगला है। चाँदनी हो तो कहना ही क्या है।'

'हो सकता है। पर.......'

'दिक्कत क्या है?'

'वह हमारे इलाके में नहीं है।'

'तो क्या? ऐसा कोई प्रतिबंध है कि हम वहाँ नहीं जा सकते? काम पूरा करके रास्ता लंबा होने पर भी 'तीर्थहल्ली' होते हुए आ सकते हैं।'

वेंकटरामय्या दीवार पर टँगा कैलेंडर देखकर कुछ हिसाब लगा रहे थे।

'कैलेंडर क्यों देख रहे हैं?'

'आपने चाँदनी की बात कही, वही देख रहा था और पंद्रह दिन हो तो सब ठीक हो जाता है। कल ही अमावस्या थी। चाँदनी रात में बागूर का तालाब देखने में बड़ा सुंदर लगता है। वह सब ठीक हो जाएगा पर एक दिक्कत है, हम कैंप कहाँ करें? उस तरफ कोप्पा भी दूर है। दूसरी ओर 'शृंगेरी' भी दूर ....'

'बागूर में ही ठहर सकते हैं न?'

'अरे, वह तो एक जंगली प्रदेश है। नायक और पटवारियों के एक-दो घर के अलावा सब झोपड़ियाँ हैं। कोई अच्छा चौपाल भी तो नहीं है।'

'किसी के घर की जरूरत नहीं है। हमारे पास टेंट है न? आप कह रहे हैं। तालाब बहुत सुन्दर है वहाँ डेरा डाल देंगे?'

'हो सकता है। पर वह एक बीहड़ जंगल है। इसके अलावा हम नवंबर के पहले सप्ताह में जा रहे हैं। तब जंगल बड़ा भयंकर हो जाता है।'

'जंगल देखने का वही तो समय होता है।'

'देखने के लिए तो अच्छा है। पर उसमें पाँव रखना भी कठिन होता है।'

'तो मैं घोड़ा लेकर जाऊँगा।'

'वेंकटरामय्या हंसते हुए बोले, यह तो पुराने जमाने की तरह का एक जबर्दस्त कैंप होगा।' अरविंद को भी ऐसा ही लगा। वह बोला :

'आप कुछ भी कहिए वेंकटरामय्या, इन कारों के आ जाने से दौरों का मजा हो जाता रहा है। सुबह चलकर शाम तक दस जगहों में धूल उड़ाकर घर लौट आयें तो कैसा दौरा हुआ ? सारे काम भी पूरे नहीं होते हैं। आराम से दो दिन एक जगह ठहरें तो विस्तार से जाँच की जा सकती है। किए जाने वाले काम भी पूरे निबटाए जा सकते हैं। काम के साथ आराम भी करना हो तो ऐसे बाहर ही ठहरना चाहिए। पर लौटने की जल्दी हो तो जाने का विचार ही नहीं करना चाहिए।'

'सब, आप की तरह कहाँ सोचते हैं ? दौरा तो आमतौर पर सबको अच्छा नहीं लगता है।'

'देखने के लिए आँखें न हों तो कोई क्या करे ? ठीक है। अगले दौरे का प्रबंध ऐसा ही कीजिए।'

: ३ :

वेंकटरामय्या लगभग पैंतालीस के हो चुके थे फिर भी अपने से तेरह वर्ष छोटे अरविंद से उत्साह में किसी प्रकार कम नहीं थे। वे दफ्तर के इंचार्ज थे, उनको अफसर के साथ दौरे पर जाने की जरूरत नहीं थी। परंतु उस जगह का काम अपने हाथ में लेते ही अरविंद ने वहाँ की सारी व्यवस्था को बदलकर ऐसा कर दिया था कि वेंकटरामय्या उसके साथ दौरे पर जा सकें। इसके लिए एक विशेष कारण भी था। वेंकटरामय्या उसी जिले के थे। शृंगोरी के पास 'किग्ग' के नंजदीक ही एक गाँव में उनके पूर्वजों की कुछ जमीन थी। इसके अतिरिक्त जहाँ उनका जन्म हुआ था और वे बड़ें हुए थे उस जगह से उनका मोह था। उस जिले का अधिकांश भाग भाग अरण्य प्रदेश था। उस प्रदेश का जितना परिचय उन्हें था उतना किसी और को न था। इसका मुख्य कारण था उनका कालेज की पढ़ाई समाप्त करने के बाद घर की कठिनाइयों के कारण एक साधारण नौकरी शुरू करके उसी में आगे बढ़ना। फिर अपने गाँव के अतिरिक्त वे अपने उस जिले के बारे में जानकारी इकठ्ठी करते ही जाते थे। प्रत्येक गाँव की अपनी एक कहानी होती है, एक पृष्ठभूमि होती है। उसमें ऐतिहासिक अंश कितना है, काल्पनिक कितना है, यह निश्चित रुप से कहना कठिन होता है। फिर भी उनके प्रत्येक वातावरण में उसके बारे में जानने की इच्छा सदा बनी रहती है। अपनी परिस्थिति से मजबूर होकर उन्हें कलर्क बनना पड़ा। पर यदि उन्हें अधिक सुविधा मिलती तो वे अवश्य इतिहास संबंधी अनुसंधान अवश्य करते। वैसे वे गत बीस वर्ष से इसी इलाके में काम कर रहे थे। उस जंगल

के चप्पे-चप्पे के बारे में वे सब कुछ जानते थे। उनके इस गुण से ही अरविंद के मन में उनके प्रति केवल सम्मान ही नहीं जागा अपितु जब भी वह दौरे पर जाता तो उन्हें अवश्य अपने साथ ले जाता। उन्होने भी इस काम को सहर्ष स्वीकार कर लिया था।

एक बार अरविंद ने कहा, 'आप की बातें सुनने से तो ऐसा लगता है कि प्रत्येक गाँव इतिहास-प्रसिद्ध है। किसी भी गाँव में जाइए लोग यहीं कहते हैं कि वनवास के समय राम और सीता यहाँ से होते हुए गये। हमारे यहाँ ऐसा कोई गाँव नहीं जहाँ सीता के पाँव न पड़े हों या भीम का अखाड़ा न हो। कितने पर और किस-किस पर विश्वास किया जा सकता है ?'

वेंकटरामय्या बोले —'यह कहाँ कहा गया है कि जो भी सुनें उसका विश्वास करना ही चाहिए। हर एक के लिए अपना-अपना गाँव ही बड़ा होता है। उसका एक महत्व होता है। इसीलिए लोक गीतों में कल्पना करके कहानियाँ गढ़ी गई है। परंतु कई बार कहानी की कल्पना के पीछे कोई न कोई सत्यांश रहता है। उसके चारों ओर आकर्षक कहानी का विकास होता है। प्रत्येक कहानी में भले ही सच न हो पर ज़िस प्रकार वह कहानी बढ़ती है वह आकर्षक होती है। इसीलिए जिस जगह को हम देखने लगते हैं उसमें एक रंग उभर आता है। ऐसी कहानियाँ कम से कम यह उपकार तो करती हैं न ?

'यदि केवल इतना ही हो तो ठीक है।'

'मनोरंजक हो या न हो। प्रत्येक जगह का एक इतिहास तो होना ही चाहिए न ? 'मान लीजिए कि कहीं एक पुराना खंडहर रहता है, एक बाँध रहता है, एक तालाब के किनारे एक स्तंभ रहता है कई चीजें रहती हैं; इतिहासकारों को उन सबके बारे में आसक्ति भी कहाँ होती है? मेरे विचार में सही इतिहास वह है जिसमें इन सबका उल्लेख हो। केवल राजाओं की हार और जीत ही कही जाय तो क्या वह सही इतिहास होता है।"

"तो आपके दृष्टिकोण में स्थान पुराण मुख्य है।"

'मुख्य या गौण की बात नहीं है। एक स्थान की पृष्ठभूमि के बारे में सोचते समय अनेक विषय उभर आते हैं। जो बातें सुनने में आती हैं वे ऐतिहासिक दृष्टि से सच न होने पर भी वहाँ के लोगों में उस पर विश्वास रहता है। अपने-अपने विश्वासों के अनुसार उनका व्यवहार होता है। एक जमाने का पत्थर दूसरे जमाने में देवता की मूर्ति बन जाता है। कल्पना और विश्वास कोई कम प्रभावदायक नहीं होते हैं। वे हम लोगों के मन के संस्कारों को व्यक्त करने के तरीके हैं ?"

बात कहीं से कहीं पहुँच जाती। ऐसी बातों की चर्चाओं के कारण ही वेंकटरामय्या अरविंद की नजर में उसके अधीन काम करने वाले एक सरकारी कर्मचारी मात्र न रहकर, उम्र में उससे बड़े होने पर भी उसके आत्मीय मित्र बन चुके थे। वे उसके लिए एक अपूर्व व्यक्ति थे। वह कई बार उनकी प्रशंसा में कहता कि नियम और अनुशासन पालन करके वे कठिन से कठिन कार्य को आसान कर देते हैं।

वेंकटरामय्या के चले जाने के बाद अरविंद को अपना विचार अधिक विचित्र सा लगा। जब वे बागूर के दौरे के बारे में कह रहे थे तब यह अपने अंतरमन में आगुंबे को याद कर रहा था। कई बार देखे गये वहाँ के सूर्यास्त सौंदर्य का अनुभव, उसी के पीछे कहीं से उड़कर आई सुगंध की याद से दूसरे एक अनुभव की याद, दिला रहे थे। वह वेंकटरामय्या की बात सुन रहा था पर उसके मन में कभी देखी हुई चाँदनी रात की याद आ रही थी।' आगुंबे में ठहरने के लिए सुन्दर जगह है।' कहने पर अरविंद को शारदा के साथ बितायी एक चाँदनी रात के दृश्य आँखों के सामने फिरने लगे। शिवमोग्गा आकर एक वर्ष हुआ था शृंगेरी जाते हुए एक रात रास्ते में ठहरा था। उस रात का सौंदर्य शारदा की उपस्थिति में और सुन्दर लगा था। उस संध्या के सौंदर्य को शारदा ने भी सुधबुध खोकर निहारा था। सूर्यास्त के बाद भी वे बहुत देर तक वहाँ बैठे थे। एक तरफ संध्या धुंधली होने लगी थी ? दूसरी ओर पर्वत के उस पार से चाँदनी लने फैलगी थी ?

'देर हो गई, चलें' शारदा के यह कहने पर भी वह और किसी लोक में डूबा था। शारदा ने दुबारा कहा, 'चलें।'

'ऐसी जल्दी क्या है ?'

'इतनी दूर तक चलकर जाना भी तो है।'

'कितनी भी दूर क्यों न हो पर वह, दूर नहीं लगता।'

'मन भले ही न थके, पाँव तो थक जाते हैं।'

'उनकी ओर ध्यान नहीं देना चाहिए।'

'इस जंगल के रास्ते चलने में आपको डर नहीं लगता ?'

'कैसा डर ?'

'कौन जाने, मुझे तो डर लगता है ?'

'मेरे होते हुए भी।'

'वही तो एक धैर्य है फिर भी डर लगता है।'

लौटते समय सारा रास्ता शारदा पति से चिपककर चलती रही थी। चारों ओर जंगल में झींगुर बोल रहे थे। कोई-कोई पक्षी अजीब-अजीब प्रकार के शब्द कर रहे थे। तमाम शब्द चारों ओर की निस्तब्धता को भयावह क्रूर बना रहे थे। हलकी ओस पड़ने से रास्ता साफ दिखाई नहीं दे रहा था। उसकी मनःस्थिति को समझकर उसको बातों में लगाने के प्रयास करने पर भी शारदा चुपचाप चल रही थी। गांव के पास आने पर ही वह बोली,

"जो भी हो पहुँच गये……"

"तुम्हें इतना डर लग रहा था।"

"अब आगे से मैं यहाँ कभी नहीं आऊँगी।"

"तुम्हें फिर सूर्यास्त देखने की इच्छा नहीं होती है ?"

"सूर्यास्त देख सकते हैं पर धुँधले प्रकाश में जहाँ चिड़िया का पूत भी न हो ऐसे रास्ते से लौटना……"

"यही तो मौज है।'

"आप के लिए मौज हो सकता है पर मुझे ऐसे धुंधलके में पता नहीं क्या-क्या दिखाई देने लगता है ?"

"क्या दिखाई देने लगता है ?"

"वह बताने की जरूरत नहीं है।"

"डाक बंगला ऊँचे स्थान में था। भोजन तैयार होने पर वे कुर्सियों पर आमने-सामने बैठ गये। तब शारदा ने कहा,

"यहाँ देखिए, चाँदनी कितनी अच्छी है। जितनी देर चाहें बैठ सकते हैं, वहाँ तो...... ।"

"वहाँ भी तो यही बात थी।"

"झूमते पेड़ों के पत्तों के बीच से जब वह छनकर आती..."

"सुन्दर लगती है न ?"

"मन में एक प्रकार का भय उत्पन्न होता है। मन की स्थिरता गायब हो जाती है।"

"यह तो पागलपन है।"

"हाँ, चाँदनी और पागलपन में विशेष अंतर नहीं है।"

कहते हुए वह हँस पड़ी थी। वह हँसी स्थाई होकर अरविंद के अंतरंग में बैठ गई थी। वैसी प्यार भरी हँसी के साथ एक दर्द-सा मन में बैठ गया था। उस दिन सायंकाल शारदा ने कहा था, "अब हम फिर यहाँ नहीं आएंगे।" वह फिर आगुंबे नहीं आ सकी। वह भी नहीं गया। बागूर के दौरे की बात उठने पर आगुंबे जाने की इच्छा एकदम जाग्रत हुई। ज्यों-ज्यों उसके बारे में वह सोचता त्यों-त्यों वह विचित्र सा महसूस करता।

: ४ :

बागूर का दौरा निश्चित होने के दूसरे दिन अरविंद नित्यक्रम के अनुसार शाम को घूमने गया था। वेंकटरामय्या तीन दिन का अवकाश लेकर चले गये थे। अतः उसके साथ जाने वाला कोई नहीं था। रोज 'कडूर' की ओर बड़े रास्ते तक जाता था। उस दिन, दूसरी ओर क्यों न चला जाय सोचकर वह 'मूडुगिरि' के रास्ते पर चल पड़ा। चलते समय ही देर हो गई थी। परन्तु किसी विचार में मग्न रहने से अरविंद को यह होश नहीं था कि वह कितनी दूर चल चुका हैं। अंत में ध्यान आने पर लौटने लगा तो अँधेरा हो चुका था। तीज का चाँद पश्चिम में डूबने को था। उसका प्रकाश बड़ा कम था और शाम की हल्की धुंध पड़ने से रास्ता भी साफ दिखाई नहीं दे रहा था। चलते हुए पांव की आवाज के अतिरिक्त और कुछ भी सुनाई नहीं दे रहा था। दस बीस मिनट चलते रहने पर भी एक प्राणीं तक नजर नहीं आया। कभी-कभी ऐसा भास होता कि दूर से कोई आ रहा है। पर ऐसा नहीं लगता था कि वह नजदीक आया हो। चारों ओर के वातावरण में एक अजीब प्रकार की शून्यता व्याप्त थी। एकदम ऐसा सुनाई दिया कि दाईं ओर कोई औरत चीख रही हो। उसने मुड़कर देखा। कोई नहीं था। पास न तो किसी का घर दिखाई दिया और न किसी की झोपड़ी ही दिखाई दी। दस फीट की दूरी पर तो कुछ साफ दिखाई भी नहीं देता था। एक क्षण के लिए वह रुक गया। पर वह आवाज फिर सुनाई नहीं दी। 'कुछ होगा' सोचकर वह फिर आगे चल पड़ा। उसने जो शब्द सुना वह सच है या कोई भ्रम। यही सोचकर वह

तेजी से कदम बढ़ाने लगा पर ऐसा लगा कि कोई उसके पीछे-पीछे चला

आ रहा है। फिर खड़े होकर देखने पर कोई नहीं था। एक दो मिनट रुक-कर फिर से चल पड़ा। लगभग बीस फूट परे साफ-साफ कदम की आवाज सुनाई दे रही थी। फिर रुककरपूछा, 'कौन है?' उसे अपनी ही प्रतिध्वनि के अतिरिक्त और कुछ उत्तर नहीं मिला। उन कदमों की आवाज भी एक-दम रुक गई। एक क्षण के लिए घबराहट हुई। अपने ही कदमों की आहट होगी, सोचकर आगे चल पड़ा। अपने कदमों की आहट को ध्यान से सुनता हुआ चलता रहा। पहले सुनी आवाज कुछ और प्रकार की थी। बड़ी विचित्र बात है; सोचकर तेजी से चलने लगा। कहीं से कुत्ते का रोना सुनाई दिया। तभी बाँईं ओर की झाड़ी से एक पक्षी अपने परों के फड़फड़ाता हुआ उसका रास्ता काटकर उड़ गया। गाँव के रास्ते के पहले दिए तक पहुंचने पर और कुछ सोचने को अवकाशं न देकर तेजी से चलने लगा। उसके लिए वह चीख और वह पदचाप भूलना सरल नहीं था। घर पहुँचने पर भी कानों में वे ध्वनियाँ गूँज रही थीं।

ऐसा अनुभव अरविंद के लिए कोई नया नहीं था। एक क्षण के लिये मन में भय उत्पन्न करने पर भी वे बातें उसको सोचने के लिये मजबूर करती थीं। कभी-कभी अपने से पूछता कि उसने जो सुना और कई बार जो आँखों से देखा वह सच है अथवा भ्रम है?. उसकी अपनी ऐसी कल्पना या भ्रम का कोई कारण भी हो सकता है। पर ज्यों-ज्यों सोचता उसे लगता कि कई बार ऐसा हो जाता है पर सदा तो ऐसा नहीं होता। कौन जाने? हमारी आँखों के परे, हमारे ज्ञान की परिधि के पार दूसरा कोई जीव-जगत हो? उसने यह विचार छोड़ दिया था कि यदि कोई बात हमारी समझ में नहीं आती है तो इसका मतलब यह नहीं है कि वह है ही नहीं। उस रात को जब वह ऐसा सोच रहा था तब उसे आगुंबे में सूर्यास्त देखकर लौटने के बाद शारदा की कही बात याद हो आई। शारदा ने कहा था, 'पता नहीं क्या-क्या दिखाई देता है।' इसके 'क्या' पूछने पर उसने 'जाने

दीजिए' कहा था। वह सोचता कि शाम को उसने जो सुना और उस दिन

शारदा ने जो देखा और कई बार उसको जो सुनने के और दिखने के समान भासित हुआ वे हमारी बुद्धि की समझ के परे के किसी स्वतन्त्र संसार की अद्‌भुत बातें हैं। जो हुआ है या वहां जो हो रहा है उन अनेक घटनाओं की प्रतिध्वनि क्यों न हो। ऐसे अनुभवों के बारे में सोचते समय उसे लगता कई बार अंधेरे से और कई बार पेड़-पौधों के पत्तों से छनकर आने वाली चांदनी के मन्द प्रकाश में वैसी अदृश्य दुनिया की सूचनायें हमें मिलती रहती है। कौन जाने? इस दुनिया को जानने के लिये ये आँखें पर्याप्त नहीं हैं, यह बुद्धि पर्याप्त नहीं है, यह ज्ञान पर्याप्त नहीं है।

: ५ :

वेंकटरामय्या के लौटने पर अरविंद उन्हें रात का अपना अनुभव बताने लगा। इस पर वे बोले,

"आप उस रास्ते में क्यों गये थे? अँधेरा होने के बाद उस तरफ लोग फटकते तक नहीं। सभी कहते हैं कि वह जगह इतनी अच्छी नहीं है।"

"कौन सी जगह?"

जहाँ आप घूमने गये थे। वहाँ तीन जामुन के पेड़ एक लाइन में हैं न। उससे परे मुसलमानों की तीन कब्रें है। भूत-प्रेत से पीड़ित अनेक लोग वहाँ जाते हैं। प्रत्येक का अपना-अपना अलग-अलग विश्वास होता है। निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता है। पर सभी यह कहते हैं कि वह जगह अच्छी नहीं है।

"आप को भूत-प्रेत में विश्वास है ?"

"नहीं भी कहा नहीं जा सकता है और हाँ भी कहा नहीं जा सकता।"

"इसका मतलब क्या निकला?" कहते अरविंद हँस पड़ा। वेंकटरामय्या ने अपनी बात सतर्क यों बताई—

"जिस प्रकार विश्वास करने में कठिनाई है, उसी प्रकार अविश्वास करने में भी कठिनाई है। इस विषय में स्पष्ट अभिप्राय रखने की आवश्यकता मेरी समझ में नहीं आती है और उससे हमारा संबन्ध भी क्या है ?"

"सीधा संबध भले हीं न हो ? पर कल मेरे जैसा अनुभव अनेक लोगों को होता है। मुझे कई बार ऐसा हुआ है। एक जगह ठीक नहीं यह कह देने से क्या अर्थ निकलता है ? एक-एक जगह एक-एक तरह की दिखाई देती है। वहाँ की भूमि, पेड़-पौधे प्रकाश के परिणामस्वरूप कुछ स्थान सदा अच्छा लगता है और कई स्थान बुरे लगते हैं। यह सब वातावरण का गुण लगता है……"

वेंकटरामय्या किसी सोच में डूबे हुए थे। एक दो मिनट बाद बोले,

"आपका कहना ठीक है। पर वातावरण माने क्या ? उससे परे भी कुछ हो सकता है न ? यदि हो तो उसका भी परिणाम……"

"हाँ, वही मैं कह रहा था। हमसे अगोचर, हमसे अबोध्य होकर परदे के पीछे पता नहीं क्या-क्या होता है—होता रहता है। उसके परिणाम का एकाध अंश हमें यदा-कदा स्पष्ट होता है। मुझे ऐसा ही लगता है। हमारी आँखों से परे एक जगत रहता होगा…।"

वेंकटरामय्या चुप हो गये। उन्होंने मन में अरविंद को एक विचित्र आदमी है सोचा होगा। उसने सोचा कि पत्नी के खो जाने के कारण उसके मन में ऐसे विचार उत्पन्न हो रहे हैं। अरविंद के विचार पता नहीं कहां-कहां घूम रहे थे। एक दो मिनट रुककर एकदम बोल पड़ा :

"आपको पूर्वजन्म में विश्वास है ?"

'अवश्य है'

'उसके लिए क्या प्रमाण है ?'

'कहा न विश्वास।'

'क्या विश्वास भी यों ही उत्पन्न हो जाता है ? यदि विश्वासपूर्वक कहना हो तो आपके मन में वह स्थिर होना चाहिए। उसके लिए कोई कारण नहीं चाहिए ?"

'एक कारण तो मैं आसानी से कह सकता हूं। दुनिया में कोई नाश नहीं होता है। बस परिवर्तन मात्र होता है। जड़ वस्तु के बारे में वह सिद्धान्त लागू होता है तो वही बात चेतन के बारे में क्यों न कही जाये ?

'मतलब ?'

'पचास साल, साठ साल, सौ साल एक जीव एक शरीर में रहकर उसे भोगता है। जब शरीर जीर्ण होता है। एक दिन चला जाता है चले जाने से ही यह कैसे कहा जाये कि यह पूर्णरूप से नहीं रहा? इतना तो जरूर कहते हैं कि हम उसे देख नहीं सकते, पर दूसरे स्थान पर वह नहीं है यह कैसे कहा जाये मुझे तो ऐसा लगता है कि वह और कहीं किसी और रूप में अनिवार्य रूप से रहता है।' यह कहकर वे चुप हो गये।

अरविंद ने कहा : 'देह भले ही जीर्ण न हो जीव तो चला ही जाता है।'

वेंकटरामय्या सोचते थे कि अरविंद अवश्य यह बात कहेगा। तब वे बोले,

'अकस्मात भी जा सकता है। परंतु उससे मेरे तर्क पर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ सकता। मुझे तो ऐसा लगता है कि वह एक जीवसत्व के सामर्थ्य का प्रश्न है।'

अपने को न रोक पाने से अरविंद ने सीधा पूछा :

'तो मेरी पत्नी भी कहीं और पैदा हुई होगी ?' वेंकटरामय्या कुछ देर तक चुप रहे। अंत में वे बोले :

'यह सब सोचने से लाभ ? सब बेकार की चिंता है।'

'सच है, पर वह मुझे नहीं छोड़ती ? क्या करूँ ?'

अरविंद की ध्वनि में दर्द था । उसे भुलाने के लिए ही हँसते हुए वे बोले,

'क्या करें ? यदि कुछ करना भी चाहते हैं तो क्या किया जा सकता है ? मन को कम से कम दूसरी दिशा में मोड़ सकते हैं, ठीक है न ?

'जी, यह भी ठीक है' कहकर अरविंद चुप हो गया ।

: ६ :

अरविंद बागूर के लिए रवाना हुआ और वह पहले कोप्पा पहुँचा । वहाँ के तहसीलदार ने उसका आदर से स्वागत किया । उचित सम्मान दिखाया । नाश्ते के बाद जो बातें हुईं उससे अरविंद को लगा कि तहसीलदार को इसके कार्यक्रम में कुछ भी उत्साह नहीं है । तहसीलदार ने कहा :

'यह केवल एक जंगल प्रदेश है जनाब, किसी प्रकार की सुविधा यहाँ संभव नहीं है ।'

'क्या वेंकटरामय्या आगे नहीं गये हैं ?'

'गये हैं फिर भी बड़ी कठिनाइयाँ हैं । ऐसा नहीं लगता कि अबतक यहाँ कोई गया हो ।'

'रास्ता ठीक नहीं ?'

'लम्बे रास्ते से जाएँ तो वैन से जा सकते हैं । पैदल से वह आधा पड़ता है ।'

'तो ठीक है । इसीलिए मैंने पहले से यहाँ घोड़ा भिजवाया है ।'

'पूरा जंगल है साहब……'

'जंगल क्या करता है ? शेर है क्या ?'

'ऐसी कोई बात नहीं, फिर भी.......'

'तो क्या चिन्ता है ? मुझे तो वह जगह देखने की इच्छा है। उसके बारे में हाल में वन विभाग से बड़ी शिकायतें आ रही हैं।

'यहाँ सभी रिकार्ड है। नक्शा है। वह सरकारी जगह है। जंगल से सम्बन्धित जगह है। कागज-पत्रों के आधार पर यहीं पर सही निर्णय लिया जा सकता है। यह बात नहीं कि वह जगह देखने के बाद ही निर्णय लिया जा सकता है। वहाँ के कई लोग उस जगह को अपना बनाते हैं।'

'पर उन सबने लिखा है न कि उनके पास रिकार्ड है।'

'अब तक किसी ने भी रिकार्ड नहीं दिखाया है। जंगल की सीमा तक सर्वे नम्बर है। उन नम्बरों के परे की जमीन की मल्कियत का निर्णय होना है।'

'उस जगह पर दूसरे नंबर नहीं हैं ?'

'वह सरकारी जगह है।'

'वहाँ कोई खेती कर रहा है ?'

'ऐसा नहीं लगता है।'

'आप लोग वहाँ तक जाते तो मालूम पड़ता..........'

तहसीलदार जरा घबराया फिर भी उसने अपनी बात नहीं छोड़ी।

'जब वह जगह रेवेन्यू खाते में ही नहीं है तो..........'

'पटवारी के रिकार्ड में क्या है वे क्या कहते हैं ?' तहसीलदार को फिर चुप होना पड़ा। थोड़ी देर रुककर :

'उन सबको यहाँ बुलाया जा सकता है, साहब।'

'उन सबको यहाँ तक बुलाने की अपेक्षा हम ही क्यों नहीं जा सकते ? वहाँ जाने पर अनेक बातें अपनें आप स्पष्ट हो सकती हैं। यहाँ तो केवल सुनी-सुनाई बातें हैं।'

दस बजने को थे। अरविंद नें कहा, "अब चलना चाहिए।" तहसीलदार को भी जाना था। पर उसे जाने की इच्छा नहीं थी। उसको यह अच्छा

नहीं लगा कि अरविंद दस बारह मील के रास्ते घोड़े पर बैठकर जाये। पर वह बड़ा अधिकारी था। कहने पर सुननेवाला भी नहीं था। फिर भी उसने दुबारा कहा,

'उस जंगली रास्ते की अपेक्षा वैन से जाना ठीक होगा, साहब। अंत में केवल दो मील रह जाते हैं; आराम करके जा सकते हैं। कुछ देर होने पर भी.........'

'नहीं, उत्तर के दर्रे से ही चलेंगे।'

'वैसे रास्ता समझ में नहीं आता। रास्ता दिखाने के लिए एक आदमी को तय कर रखा है।'

'उसे चलकर ही जाना पड़ेगा।

'वह वहाँ का है। वे लोग दिन में दो-दो बार जाकर आ सकते हैं।'

तहसीलदार ने जरा संकोच से आगे कहा, "मुझे दोपहर को जरा काम है, आपकी इजाजत हो तो शाम को आ जाऊँगा।"

'आपको आने की जरूरत भी नहीं है।' आगे हँसते हुए अरविंद बोला, 'आपका आने का मन नहीं है यह मैं जानता हूं। बहाना क्यों?

'अभी चलता पर.......'

'आराम से आइए। कल सुबह आएँ तो भी हर्ज नहीं है।'

'ठीक है सर। सुबह जल्दी आ जाऊँगा।'

: ७ :

यह खबर तालूक आफिस से मिलने पर कि 'सब-डिवीजनल अफसर आकर कैंप करेंगे,' बागूर का पटवारी गोपालय्या हैरान हो गया। अब तक वहाँ एकबार भी तहसीलदार नहीं गया था। सब-डिवीजनल अफसर के आने की बात सुनकर गांव वालों में भी कुतूहल पैदा हुआ। कुछ मास पूर्व वन-विभाग के लोग जब गये थे तब कुछ तकरार हुई थी। सर्वे अधिकारी आकर कुछ जमीनों का सर्वे करके गये थे। विवादास्पद जंगल के भाग के कुछ पेड़ों को साफ करके वहां निशान लगाने का विचार वन विभाग के अधिकारियों का था। जंगल को काटने के लिए जब उनके आदमी आये तब गांव वालों ने उनका विरोध किया। स्थिति यहां तक बिगड़ी कि उनको एक पाव चावल के लिए भी कोप्पा तक जाना पड़ता था। जंगल को साफ करने के लिए जिन्होंने ठेका लिया था, उन्हें तंग आकर अंत में नौकर चाकरों को लेकर यहाँ से चले जाना पड़ा। वह घटना हुए छः मास बीत गये थे। अब एकदम सब-डिवीजनल अफसर के आने की खबर सुनकर कुछ में उत्साह उत्पन्न हुआ तो कुछ में आतंक फैल गया।

जब वेंकटरामय्या तालूक कचहरी के कुछ लोगों के साथ एक दिन पहले पहुंचे तब गोपालय्या उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। उनके आते ही वह बोला, 'कैसे भूल पड़े भई! हमारे जंगल में कैंप लगाने का मतलब क्या है?'

'क्या जंगल समझकर चुप रह सकते हैं? पिछले साल कितने झगड़े हुए?

सुना है आप लोगों ने वन विभाग वालों को भगा ही दिया। क्या यह बात सच है ?'

'ठीक है; शहर से आने वाले यहाँ टिक सकते हैं ? पता नहीं कौन-कौन आये ? जैसे आये वैसे चले भी गये। हमने उनसे क्या किया ?'

'आप लोगों पर बड़ी शिकायतें हैं।' कहते हुए वेंकटरामय्या हँस पड़े।

'यह बात है ? होने दो। मुझे क्या ? मैं भी इस पटवारीगिरी से थक गया हूँ; फायदा तो कुछ है नहीं। बदनामी अवश्य मिलती है। किसे चाहिए यह सब ?'

वेंकटरामय्या और पटवारी का परिचय बड़ा पुराना था। वे पत्नी की ओर से दूर के रिश्तेदार भी थे। पर वर्षों तक भेंट नहीं होती थी।

गोपालय्या का इकलौता बेटा जब चिक्कमगलूर की सरकारी पाठशाला में कुछ समय से पढ़ा रहा था, तब वह वहां जाया करता था। पांच-छः महीने तक माँ-बाप दोनों वहां थे। पता नहीं बहू के व्यवहार से या किसी अन्य कारण से गोपालय्या फिर से बागूर में आकर रहने लगा। चिक्कमगलूर में रहते पुरानी मित्रता फिर से सुदृढ़ हुई थी। अब उस बात को भी तीन साल हो चुके थे। उसके बाद एक-दो बार वेंकटरामय्या किसी काम के लिए कोप्पा गये तो बागूर जाकर गोपालय्या से मिलकर आये थे। अब वेंकटरामय्या सरकारी काम पर आये तो फिर पुरानी मित्रता के कारण गोपालय्या उन्हें बुलाकर अपने घर ले गये थे। प्यास लगने पर वेंकटरामय्या ने कहा,

'मैं नहीं जानना चाहता था कि तुम पटवारी के पद को कितना चाहते हो ? बाद में यदि जरूरत न हो तो छोड़ देना, अब तीन दिन तो उससे छुट्टी नहीं मिलेगी।'

'ऐसी कौन-सी बात है कि तुम्हारे अफसर तशरीफ ला रहे हैं ?'

'कुछ भी नहीं है। इस जंगल का झगड़ा है न। खुद देखना चाहते थे। वैसे उन्हें जंगल में भटकना पसंद है। अजीब आदमी हैं, पर बहुत अच्छे हैं। बागूर जाने की बात उठते ही मैं भी तैयार हो गया। तुम्हारा आतिथ्य याद करें तो सदा मुंह में पानी भर आता है।

'अरे मेरे आतिथ्य में क्या रखा है ? तुमने पुराना स्नेह बना रखा है। वह हमारा भाग्य है। खैर, अब क्या चाहिए ?'

'क्या चाहिए ? सब चाहिए। गाड़ी में टेंट ला रहे हैं। डेरा लगाने के लिए पहले पांच-छः आदमी चाहिए।'

'टेंट किसलिए ? यहीं हमारे घर में रह सकते हैं।'

'उन्होंने मना किया है। तालाब के पास डेरा लगाना है।'

'तुम क्या पागल हो गये वेंकटरामय्या ? वहां कोई जा भी सकता है ?'

'हो नहीं सकता ?'

'सभव ही नहीं। उस तरफ की झाड़ियाँ इतनी बढ़ गई हैं कि वहाँ से तालाब तक जाना भी मुश्किल है। चाहे तो इस तरफ के मैदान में हो सकता है। पर पीने के पानी से लेकर हर चीज के लिए इधर ही आना पड़ता है और उस तरफ की झाड़ियों में भेड़िये भी हैं।'

'पानी के लिए तालाब नहीं है ?'

'कैसी बात करते हो। चार दिन रहना नहीं है क्या ? पानी की बात छोड़ो। झाड़ियां काट कर आगे जाने पर भी तालाब में पांव रख नहीं सकते हैं। वह कोई तालाब है, कीचड़ का दलदल है। पता नहीं किस जमाने का तालाब है ? इतना झाड-झंखाड बढ़ गया है कि बस पूछो मत। देखने को तो सुन्दर है पर पानी-वानी नहीं है। वहां पांव रखना भी मुश्किल है।

'तो डेरा कहाँ लगाया जाय ?'

'मेरी सलाह मानो तो गांव के पास ही ठीक है।

'किस तरफ ?'

'पश्चिम की दिशा में एक अमराई है। वह अच्छी जगह है। चाहो तो देखने चलो, कुछ नाश्ता कर लो। बाद में कुछ मिलेगा कि नहीं। यह भीतर गई तो बाहर आई ही नहीं।" उसके यह कहने पर कमलम्मा दरवाजे पर आकर बोली :

"बना रही हूँ। ये तो अभी-अभी आये हैं फिर इन्हें क्यों धूप में लिये जा रहे हैं ? जरा आराम करने दीजिए।"

'तुम्हारे भी क्या कहने हैं। यह क्या आराम करने आया है ? कल साहब आने वाले हैं। तब तक सारा प्रबंध हो जाना चाहिए।'

वेंकटरामय्या बोले, 'नमस्कार ! आप कैसी हैं ?

'भगवान की कृपा है। बहुत दिनों के बाद आये हैं, भाभी जी नहीं आईं ? उन्हें साथ लाना नहीं था क्या ?'

'यह क्या बारात में आया है ? बेटी की शादी करो तब भाभी जी को साथ लेकर आएगा।'

'शादी किसकी है ? हां, कुमद कहां है?'

"यहीं है; यहां आये उसे भी चार-पांच महीने हो गये। अब तक अपने भाई के पास हासन में थी। उसने बी०ए० पास कर लिया है। क्या अब भी शादी नहीं करनी चाहिए ? वर क्या अपने आप घर तक चलकर आएगा ? मेरी बात ये सुनते ही नहीं हैं। जब कहती हूं 'देखेंगे कह देते हैं'। वह भी ऊब गई है। हमें तो इस जंगल में रहने की आदत हो गई है। बड़े शहर में रहने के बाद उसे......'

'बस, तुम अपनी राम-कहानी को बाद में सुनाना। अब पहले जरा नाश्ता दो। कोई बात करने को मिल जाए तो बस।'

'इसमें बुरा क्या है ? रोज आपके गांव में आता कौन है ? मुझे तो कई बार आश्चर्य होता है। आप लोग यहां रहते कैसे हैं ?'

'जब जन्म हीं यहां हुआ। उसे छोड़कर कहां जायें और जाकर भी देख लिया है। मुझे तो आपके चिक्कमगलूर से यही अच्छा लगता है।'

'तुम्हारे अकेले के कहने से क्या लाभ है ? तुम्हारी पत्नी भी कहती है ? बच्चे कहते हैं ?'

'बस, उनकी बातें सुनने लगो तो हो गया।'

यह गोपालय्या का ढंग था। उसमें उसका स्वभाव व्यक्त होता था। वह किसी की ऐसी बात नहीं सुनता जो उसे पसंद नहीं आती। वह अपनी मेहनत से बढ़ा था। उसने चारों ओर की प्रकृति से संघर्ष करके जीवन के लिए

अनुकूल वस्तुओं को प्राप्त किया था। एक दृष्टि से उसका जीवन यहां के पेड़-पौधों के समान हो गया था। धूप और वर्षा का समान रूप से मुकाबला करने की स्थिरता उसमें आ गई थी। मेहनत करना उसका कर्तव्य है, फल चाहे जो भी मिले। यह उसका सिद्धांत था। वह कष्ट से डरता नहीं था और सुख से फूलता नहीं था। वह एक प्रकार निस्पृह होकर बड़ा हुआ था। अपने दैनिक परिश्रम में उसे अपने आसपास की एकांतता खटकती नहीं थी। वह उस वातावरण के अनुकूल हो गया था। उसकी पत्नी कमलम्मा भी उसी के साथ परिश्रम करते रहने से उसी के समान हो गई थी। परंतु वह बेटे-बहू की याद आने पर शादी लायक बेटी को देखने पर चारों ओर के जंगल से ऊब जाती। कहती कि कम से कम अब तो बच्चे और पोतों के साथ नहीं रहना चाहिए ? पर गोपालय्या गांव छोड़कर जाने को तैयार नहीं होता था। 'बेटे के पास छः महीने रहकर नहीं आये ?' कहकर चुप हो जाता था। बेटे के बारे में शिकायत करने की कोई खास बात न होने पर भी, "उनकी गृहस्थी उनकी होती है, हमारी हमारी होती है। पानी सदा आगे को बहता है, कभी पीछे मुड़कर देखता है ?" कहता। परंतु उस जैसी तसल्ली कमलम्मा में नहीं थी।

प्रतिदिन के परिश्रम के कारण कसा हुआ गोपालय्या का शरीर उसकी आयु को व्यक्त नहीं करता था। वह साठ साल का हो गया है यह तो कमलम्मा को देखकर कहना पड़ता था या माथे पर सफेद होते बालो को देखकर कहना पड़ता। पर मेहनत में उसके उत्साह को और चाल की चुस्ती को देखने पर ज्यादा से ज्यादा पेंतालीस का कहा जा सकता था। पहनने के लिए एक धोती, ओढ़ने के लिए एक धोती, इतने कपड़ों में ही वह सारा समय बिता देता। कभी की सिलाई गयी कमीज तो गाँव से बाहर जाने भर के इस्तेमाल में आती।

पूर्व दिशा की अमराई में चार-पांच लोगों ने शाम तक काम करके तीन टेंट खड़े किये। पास की झाड़ियोंको काटकर सामने का मैदान साफ किया।

वेंकटरामय्या ने सबको अपना अपना काम पूरा करने का आदेश दिया था मानो उसके अपने घर के उत्सव में भाग लेने के लिए अफसर आ रहे हों। उनके लिए न होता तो गोपालय्या इतनी दिलचस्पी नहीं दिखाता। सारा काम करके सायंकाल घर लौटते समय गोपालय्या ने पूछा :

'हो गया न भाई सब, तुम्हारे मन के मुताबिक।'

'पेट्रोमेक्स आ जाये तो हो गया समझो।'

'वह भी आ जाएगा, कल सुबह तक। और कोई काम हो तो अभी बता दो।'

'और कुछ नहीं जी, फिलहाल मुझे गरम काफी चाहिए। अभी से इतनी सरदी हो गई है। रात को तो भगवान ही बचाये।'

'यह कौन-सी ज्यादा सरदी है। संक्रांति के आसपास कुछ और ही होती है। गरम कोट, स्कार्फ पहन कर सरदी कहें तो······?' कहते हुए गोपालय्या हँस पड़ा।

'जी हाँ, जितना कपड़ा पहनो उतनी ही सरदी ज्यादा लगती है।'

घर की सीढियाँ चढ़ते अपनी आदत के अनुसार गोपालय्या बोला :

'देखो जी इसे काफी चाहिए। गरम यानि खौलती हुई होनी चाहिए।'

'बारह बजे आ सकते हैं जो भी हो दोपहर का भोजन यहीं।'

'इतनी देर क्यों ?'

'कोप्पा से घोड़े पर आएँगे।'

'छोटे रास्ते से ?'

'हाँ, ऐसा ही लगता है, मैंने पूछा नहीं था।'

'आदमी विचित्र लगता है, शादी हुई है ?'

'हुई थी, बेचारे, तीन साल हो गये पत्नी को गुजरे।'

'उमर क्या है ?'

'पैंतीस से ज्यादा नहीं होगी।'

'तो दूसरी शादी कर सकते हैं न ?'

‘कौन जाने, जो भी हो, बड़े अधिकारी हैं। घनिष्ठता होने पर भी यह सब पूछा नहीं जा सकता है ?’

‘ठीक है, पर बेचारे, छोटी उमर में ऐसा हो जाना, कष्टदायक होता है। जात कौन-सी है ?

‘जात हमारी ही है। तो भी क्या ? तुम क्यों पूछते हो ?’

‘ऐसी कोई बात नहीं है। और किसी जाति के हों तो मुर्गमुसल्लम चाहिए न, ऐसा हो तो उन सबका तुमको ही इंतजाम करना पड़ेगा।’

‘ऐसी बात नहीं है। बहुत ही साधु प्राणी हैं।’

दस मिनट बाद कमलम्मा भी आकर बीच के दरवाजे के पास बैठ गई। दिए के मंद प्रकाश में उसका मुंह ठीक दिखाई नहीं दे रहा था। वेंकटरामय्या ने पूछा :

‘रोशनी कितनी कम है। एक लालटेन क्यों नहीं रखते ?’

‘यहाँ अँधेरा होने के बाद काम क्या ? तुम्हारे आने से इतनी देर तक रोशनी करके बैठे हैं। नहीं तो तीन घण्टे की रात तक वह भी नहीं रहती। प्रातः जल्दी उठना पड़ता है।’ वेंकटरामय्या को उस जीवन का अनुभव न होता तो सोच सकते थे कि यह जीवन का कैसा विचित्र क्रम है। वे बोले।

‘तो सो जाओ।’

‘ऐसी कोई जल्दी नहीं। दीये के बारे में पूछा था न। इसीलिए कहा था।’

‘आजकल तुम उस तरफ आये ही नहीं।’

‘कैसे हो सकता है ? तुम्हीं बताओ। इस वर्षा के दिनों में चार मास को तो बँध से जाते हैं। वर्षा के बाद कोप्पा के बाजार तक हो आया। तुम लोगों के आने का समाचार न आता तो हासन तक हो आता।

‘क्यों ?’

‘माधव का पत्र आया था। उसने लिखा था कि कुमुद के लिए एक वर है। उसे साथ ले जाता तो दिखाया जा सकता था।’

गोपालय्या की पत्नी की यह इच्छा थी कि उसका पति वेंकटरामय्या के बड़े लड़के के साथ कुमुद के विवाह की बात चलाये। पर गोपालय्या ने ऐसा नहीं किया। इसीलिए उस प्रसंग को बीच में लाने के लिये उसने वेंकटरामय्या से पूछा :

'आपने लड़के के लिये कोई लड़की देखी ?'

'देखी जा सकती है पर वह माने तब न ! पिछले श्रावण में पचीस का हो गया। पूछो तो 'जल्दी क्या है' कहता है। उसकी पढ़ाई भी खतम नहीं हो रही है। एम० एस-सी० हो गया। अब पी-एच० डी० करना चाहता है।'

'पैसे देने को तुम हो, उसे किस बात की चिंता ?'

'उन सबके लिए मैं पैसे कहाँ से दे सकता हूँ।। बी० एस-सी० तक तो ठीक था। स्कालरशिप या स्टुडेण्ट फण्ड मिलता है।'

'तो फिलहाल विवाह का विचार नहीं है।'

'हमारी बात वह माने तब न ? अपनी मर्जी से करने दो। मेरी बात सुनता तो कुमुद को बहू बनाता। पर वह माने भी तो।

'देखने पर मान सकता है……?'

कमलम्मा को आशा उत्पन्न हुई। उसकी बात से स्पष्ट होता था कि उसकी लड़की सुंदर है। देखने पर मान सकता है। संकोच में फिर भी आधे लिहाज और आधी आतुरता में बोली,

'कई बार इनसे कहा, 'एक बार कहकर तो देखिए। पर इनके कान पर जूँ नहीं रेंगती। अब आपने ही बताया है। बड़ी खुशी की बात है। आप जरा इस तरफ ध्यान दें तो कुमुद का भाग्य……'

'इतनी बड़ी बात आप क्यों कह रही हैं ? आपकी कुमुद को वर मिलना कौन-सा कठिन है। देखने में अच्छी है, पढ़ी लिखी है…… ।'

'ये ढूँढ़ें तबतो मिले। इन्हें तो जहाँ ये हैं वर वहीं चलकर आना चाहिए। ऐसे कोई वर मिलते हैं। वैसे जान पहचान का खानदान हो तो अच्छा रहता है ? अब एक ही तो बेटी है। उसे दूर देना नहीं चाहती हूँ।'

कमलम्मा ने इन शब्दों मे अपने मन की आतुरता व्यक्त की। उसकी अंतिम बात से उसके हृदय के दर्द को वेंकटरामय्या समझ गये। गोपालय्या की एक बच्ची जब वे यात्रा पर गये थे तब गुम हो गयी थी। वह केवल ढाई वर्ष की थी और अब तक नहीं मिली। आज पच्चीस साल हो जाने पर भी कमलम्मा के मन से वह दर्द नहीं गया था। उस बात की चर्चा न करने पर भी प्रसंगों में उसकी ममता उमड़ आती। गोपालय्या की स्थिति भी ऐसी ही थी। वह गुम हुई बच्ची के बारे में बात ही नहीं करता। पहले एकबार बात उठने पर कहा था,

'बीमार होकर या और किसी कारण वह आँखों के सामने मर जाती तो एक प्रकार की तसल्ली रहती। पता नहीं बच्ची का क्या हुआ? कहाँ होगी? होगी भी कि नहीं? कुछ भी समझ में नहीं आता। क्या कहें हमारा दुर्भाग्य है? क्या करें?'

'जब भी यह बात उठती वेंकटरामय्या का भी गला भर आता। अब फिर वही बात उठी। उसीसे बचने के लिए उन्हें तसल्ली देने के लिए वे बोले,

"इस बार छुट्टी में आने पर उससे पूछता हूँ और मैं भी अपनी तरफ से जोर दूँगा। यदि मान जाय तो अच्छा है। मेरी तरफ से कोई बाधा नहीं है।"

कमलम्मा को तसल्ली हुई। गोपालय्या को संतोष हुआ। फिर भी पत्नी को चिढ़ाने के लिए ही वे बोले:

'हम तीनों मान भी लें तो क्या हुआ? तुम्हारी बेटी भी तो माने। जो भी हो बी० ए० तक पढ़ी लिखी.........

'उसकी चिंता आप न करें।'

'ठीक है, मैं चिंता नहीं करूँगा। पर अभी तुमने ही तो कहा था कि मैं शादी के बारे में कोई बात नहीं करता। वेंकटरामय्या कहे तो क्या वह

मानेगा नहीं ? उसके मान जाने के बाद यदि तुम्हारी बेटी ही इनकार कर दे तो क्या होगा यही मेरा कहना है।'

"बस भी कीजिए। मेरी बेटी ऐसी जिद्दी नहीं है। इतना विश्वास मुझे है।"

'वेंकटरामय्या बोले मुझे विश्वास है। उसकी शादी में कोई दिक्कत नहीं होगी। "बाद उन्होंने अपनी बात जारी रखते कहा यह सब किसके बस की बात है ? यों ही हम सोचते रहते हैं कि ऐसा करेंगे। जैसा भाग्य में है वैसा होगा। हम अपना प्रयत्न करते चलें। बस इतना ही हमारा काम है।'

वेंकटरामय्या के मन में कुमुद को अपने बेटे के लिए लाने का विचार था। लड़की अच्छी थी। छरहरी, सफेद और सुंदर दिखती थी। दोपहर को भोजन करते समय और सांयकाल लौटते समय उसे देखा था। तबसे उसके मन में वह विचार उठ रहा था। बेटा मान जाय तो ठीक है। उनको भरोसा भी था कि यदि वह शादी करने को तैयार हो गया तो इससे शादी करने को अवश्य मान लेगा पर वे यह सोच कर चुप हो गये थे कि भगवान की मर्जी कौन जाने। अंत में वहीं बात उनके मुंह से निकली थी।

: ८ :

स्नान और नास्ता करके लगभग नौ बजे के समय वेंकटरामय्या और गोपालय्या उस जगह गये जहाँ कैंप के लिए प्रबंध किया गया था। वहाँ पहुँचने पर रात को वहाँ पहरे पर सोये दोनों चौकीदार घबराये से लगे। वे बोले,

'यहाँ सोना बड़ा मुश्किल है, साहब'

'क्यों क्या हुआ ?'

'बड़े गीदड़ है, साहब, झुंड के झुंड रात भर चिल्ला रहे थे। 'गोपालय्या वह पता था, अतः 'गीदड़ ही तो है न ?' कहते हुए वे हंस पड़े।

वेंकटरामय्या ने पूछा : यहाँ गीदड़ है।'

'अरे, जंगल में न होंगे तो क्या आपके घर में होंगे ? और थोड़ा आगे चले तो भेड़िये भी मिलेंगे। कभी कभार यहाँ तक आकर भेड़, बकरी भी उठा ले जाते हैं। इसलिए क्या किया जा सकता है।

'क्या आप लोगों को डर नहीं लगता।'

'डर कैसा। उनके ठिकाने पर जाकर यदि ये कहें कि चले जाओ यहाँ से तो वे कहाँ जाएँगे ? क्या चिक्कमकलूर जाएँगे ?' कहते हुए हँस पड़े। उनकी बातों से उन चौकीदारों की घबराहट मिटी नहीं। वे सोचने लगें और दो रातें यहाँ कैसे कटेंगी ? वेंकटरामय्या ने जानबूझकर कहा : और दो रात तो यही साहब रहेंगे। इसलिए तुम्हें अब घबराने की जरूरत नहीं। उनके मजाक के स्वर को ताड़कर उनमें एक ऐसे बोला जैसे अपने से

कह रहा हो, 'जैसे हम साहब से डरते हैं, क्या उसी तरह गीदड़ और

भेड़िये भी उनसे डर जाएंगे ?'

वहाँ के प्रबन्ध की शेष बातें निवटा कर वेंकटरामय्या बोले, 'जरा तालाव तक हो आयें ?'

'तुम्हें भी वह तालाब देखने का एक भूत सवार है ? क्या धरा है उसमें ?'

'जो भी हो। वह एक प्रसिद्ध तालाव है न ?'

'एक जमाने में प्रसिद्ध था। अव वहाँ क्या रखा है खाक ? उस कीचड़ के कुंड को 'मयूर तालाब' नाम देना व्यर्थ है। अब उधर जाता ही कौन ?

"कोई जाये या न जाये ? हमें जाना चाहिए। अपने आफिसर से मैंने उसका जिक्र कर रखा है। उनका वह तालाव देखना भी इतना ही मुख्य है जितना यहाँ का काम।'

'उन्हें ले जाओ। लौटने के बाद वे क्या कहते हैं वह मुझे बताना जरूर तुम्हारी तारीफ करेंगे।'

'खैर जाने दो। उस तालाव के बारे में लावनी (एक प्रकार गीत) गाने वाला परशुराम अगर गाँव में हो तो उसे बुला भेजना। रात को उसकी लावनी सुनेंगे। बड़ा अच्छा रहेगा। 'आजकल वह नहीं है पता नहीं है कितना जमाना बीत गया उसे गये' 'गाँव छोड़कर चला गया ?'

'गाँव ही नहीं; दुनियां छोड़कर चला गया।' कहते हुए गोपालय्या हँस पड़ा।

'अच्छा। बेचारा। कितना अच्छा लावनीबाज था। बहुत पहले सुना था करीव करीव दस साल हो गये। आज भी उसकी लावनी मेरे कानों में गूज रही हैं। क्या आजकल कोई और गाने वाला नहीं है ?'

'पर अब किसको उसकी जरुरत है ? गाँव में दस पाँच हम जैसे बूढ़ों को छोड़कर पता नहीं आजकल के लोगों को वह कहानी पता भी है या नहीं ?'

'बड़े दुर्भाग्य की बात है। इतनी बढ़िया कहानी और लावनी लुप्त होती जा रही है। मुझे हीं उसे लिखकर रख लेना चाहिए था।'

"गाना भूल जाना कौन बड़ी बात है ? आज से दस साल पहले किले के जो अवशेष दिखाई दे रहे थे वे भी अब मिट चले हैं। एकाध इधर उधर पड़े बड़े बड़े पत्थरों को देखकर ही कहना होगा कि कभी यहाँ किला रहा होगा। परकोटे की खाई तो है पर वह भी भर चली है। मुझे भी उधर गये बहुत दिन हो गये। तालाब के पास का बांध तो वैसा ही है। चारों ओर का जंगल इतना घना हो गया कि लोगों का वहां जाना ही मुश्किल है।'

'जयवर्धन होयसल वंश से संबन्धित होगा ?'

'यह सब किसे पता है भई; लोग कहते हैं या कहते थे। वह जयवर्धन का किला है। आज वह भी नहीं रहा और किला भी नहीं रहा। केवल नाम बचा है। यह भी किसे पता है कि वह कहानी कितनी सच है।'

'बिना किसी आधार के कहानी बन सकती है क्या ?'

'ठीक है। लोगों का ऐसा विश्वास है। आज भी कहते हैं कि पूर्णिमा की रात को अगर वहां जाये तो ठीक आधी रात को वहां 'मयूरनौका' ऊपर आती दिखाई देती है। ऐसे कहने वाले भी हैं कि उन्होंने अपनी आंखों से देखा है, पर मुझे तो विश्वास नहीं।'

'कल ही पूर्णिमा है हम ही क्यों न जाकर देखें ?'

'और कोई काम नहीं तुम्हें ? मैंने बताया था फि वहां कोई जाता ही नहीं। सिर्फ जंगल के डर से नहीं। जंगल क्या कर सकता है ? वह जंगल ही कुछ और तरह का है।'

'यानी कैसा ?'

'कैसा माने क्या बताऊँ ? दिन में तो बड़ा अच्छा लगता है पर रात को बड़ा भयानक हो जाता है। चांदनी रात में तो कुछ कहो ही मत। पता नहीं कौन सी माया है। ऐसा होता है मानो सांस रुक सी जाएगी। आगे पाँव ही नहीं उठते। डर के मारे भागने का मन होता है। पर पांव नहीं उठते। कभी कभी जैसे स्वप्न में हो जाता है वैसे ही। बड़ी अजीब सी जगह

है। वहां जाना ही नहीं चाहिए। एक बार मैं भी वहां फंस कर चक्कर खा चुका हूँ।'

'क्या हुआ था ?'

'किसी बात को लेकर निश्चित रुप से कहा नहीं जा सकता कि ऐसा ही है। ऐसा लगता है जैसे किसी के पंजे में जकड़ गये हो। लगता क्या है क्यों कहे ? जकड़ ही जाते हैं। हम अपनी मर्जी से चल फिर भी नहीं सकते। वहां ठहरने का मन भी नहीं होता पर वहां से चले आने की हिम्मत भी नहीं रहती। पांव की जैसे ताकत ही खत्म हो जाती है। उसे याद करु तो आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। ओह ? उसके बारे में सोचना भी नहीं चाहिए।'

'क्या यह सच है ?'

'मै तो अपना अनुभव बता रहा हूँ और तुम पूछ रहे हो यह सच है ? कुछ जगहें ऐसी भी होती है। बहुत सी बातें ऐसी होती है जो दिखाई नहीं देती पर होती रहती है। ऐसी जगहों पर जाकर न फंसना ही अच्छा रहता है।'

यह कहकर गोपलय्या चुप हो गया। वेंकटरामय्या सोचने लगे कि अरविन्द से उस तालाब का उल्लेख करके उसके प्रति उत्सुकता उत्पन्न करना ही अच्छा नहीं हुआ पर उन्होंने यह सोचकर अपने को तसल्ली दी कि अरविंद से यह कह देंगे कि जंगल बेहद घना हो गया है। वहाँ जाना संभव ही नहीं। एक ओर वह तालाब, वह बांध उसके पार का किला उन सब की पृष्ठ भूमि से संबंधित वह प्राचीन कथा उनको अपनी ओर आकर्षित कर रही थी और दूसरी ओर गोपालय्या के अनुभव का वह पुराना अव्यक्त भय, अगोचर जगत की अस्पष्ट बातें मन को पीछे खींच रही थी। एक बार अज्ञात के द्वार पर खड़े होकर उस पार क्या है ? यह जानने का कौतूहल उत्पन्न होता तो दूसरी ओर यह भय पीछा करता कि उस द्वार को खट-खटना ठीक नहीं। खोलना भी नहीं चाहिए और तो और पांव भी नहीं

धरना चाहिए। गोपालय्या की बात सुनने तक उस स्थल की रमणीय पौराणिक कथा ने उनके मन को मोह लिया था। इसी कारण उन्होंने उस बारे में अरविंद से बड़े उत्साह से जिक्र किया था। ऐसे विषयों में अरविंद भी विशेष आसक्ति दिखाता था इसीलिए बागूर के कैंप का आयोजन बड़े उत्साह से किया गया था। गोपालय्या की बात ने उनके उत्साह को बहुत कम कर दिया। यह तो ऐसा हुआ जैसे दूर के ढोल सुहावने होते हैं। उनके मन में संघर्ष होने लगा। स्थल पुराणों में आसक्ति रखने वाला उनका मन आसानी से हार मानने के लिए तैयार न हो रहा था। इसलिए उन्होंने सोचा प्रत्येक का अपना-अपना अनुभव होता है यदि अरविंद जिद पकड़े तो अंधेरा होने से पहले जाकर आ सकते हैं।

६

कोकोप्पा से घोड़े पर चले अरविंद का उत्साह एक घंटा रास्ता तय करने में ही घट गया था। रास्ता पूरा जंगली था। उतराई चढ़ाई बहुत थी; कई स्थानों में यह पता नहीं चलता था कि आगे कैसे बढ़ा जाय। जो प्यादा राह दिखाने आया था वह आगे-आगे कदम रखता जा रहा था। अरविंद उसी के पीछे चल रहा था। कई जगह झाड़ियों को काटकर रास्ता बनाकर आगें बढ़ना पड़ा। उतरते समय कई जगहों पर गहरी ढलान पर घोड़े की पीठ पर बैठकर जाना असंभव हो जाता। वहाँ नीचे उतरकर पैदल चलना पड़ता। घोड़ा अनुभवी था। अरविंद को उसपर चढ़ने की आदत थी अतः कोई कठिनाई नहीं हुई। परन्तु पथरीली उतराई वाली जगह पर कई बार आगे बढ़ना ही कठिन हो जाता। आगे चलते-चलते

जंगल घना होने लगा। दिन के ग्यारह बजे का समय होने पर भी जंगल में आधी रात का सा अंधेरा था। सौ दो सौ फीट की दूरी तक कहीं कहीं सूर्य की किरणें जमीन पर पड़ती थी। घोड़े की टाप के अतिरिक्त और कोई शब्द सुनाई नहीं देता था। कभी कभार किसी जंगली पक्षी की आवाज सुनाई देती। आगे बढ़ते समय नीचे कुछ सरसराहट सी हुई। तीन-तीन तरफ खरगोश भागते दिखाई दिए और बढ़ने पर यात्रा और कठिन होने लगी। उस कठिनाई को देखते हुए घोड़ा चलाते समय उसे इधर उधर देखने का अवकाश ही नहीं था और देखने के लिए सिवा घने जंगल के और कुछ था भी नहीं एक घंटा चलने के बाद वह इतना ऊब उठा कि उसने सोचा कि उस रास्ते आना नहीं चाहिए था। ऐसे ऊब कर उसने आगे चलने वाले वाले प्यार से पूछा, 'यह रास्ता कौन सा है, उसकी ऊब को समझते हुए प्यादा बोला, 'वही जनाब, बागूर का रास्ता। 'उसे 'ठीक है' कहकर चुप हो जाना पड़ा बाईं ओर कहीं पानी बहता सुनाई दिया। इधर- उधर एकाध पके पत्ते गिर रहे थे। उसने दुनिया में ऐसे स्थान भी हो सकते हैं। आगे चलते हुये प्यादे के लिए यह कोई विशेष बात न थी। उसे घबराहट तो हो ही नहीं रही थी। उसके लिये तो वह शायद रोज की सी बात थी। सौ दो सौ गज जाने के बाद एकदम रुककर वह पीछे हटा। "और जरा ठहरिए मालिक" कहते वह घोड़े के पास आकर खड़ा हो गया। अरविंद कों डर लगा। एक क्षण के लिए वह भी घबरा गया। उसने पूछा 'क्या है ? नौकर बोला, 'कुछ नहीं अजगर जा रहा है। उसने खरगोश पकड़ लिया है। बीस कदम आगे एक वृहदाकार अजगर रास्ता काट कर धीरे-धीरे से सरक रहा था। ऐसा लग रहा था। मानों आड़े पड़े एक पेड़ का तना ही सरक रहा हो। उसे देखते ही अरविंद के माथे पर पसीना आ गया। उसके सरक जाने के बाद धीरे से वे लोग आगे बढ़े।

तंग पगडंडी पर दस बीस मिनट चलने के बाद पेड़ पौधों का घनत्व जरा कम हुआ। पूरी तरह मैदान दिखाई देने पर अरविंद की जान में जान

आयी। घोड़े की भी यही दशा हुई होगी। मैदानी इलाका देखते ही वह भी खुशी-खुशी कदम बढ़ाने लगा। अरविंद ने प्यादे से यह पूछा अभी और कितनी दूर है? वह बोला, 'बस आ ही पहुँचे मालिक, वह टीला पार करते ही। पर उसने जो टीला दिखाया वह एक और जंगल का छोर था।' अच्छा कहते हुए वह आगे चला। प्यादे ने भी तेजी से कदम बढ़ाए। ठीक दोपहर होने पर भी सर्दी का मौसम होने के कारण धूप अच्छी लग रही थी, पर वह भी थोड़ी ही देर की बात थी। जंगल में घुसते ही फिर वही छाया और प्रकाश का खेल शुरु हुआ। टप-टप झड़ते पत्ते और ओस की बूँदे कई प्रकार की आवाजे। कभी-कभी पूरबी हवा बहने पर सु-ई—ई की सी विचित्र गंभीर आवाज सुनाई देती थी।

जंगल की दायीं ओर धीरे से ऊपर चढकर उस तरफ के मैदान में पहुँचने पर चारों ओर फैला प्रदेश आँखों को लुभाने लगा। उसके बाद फिर पहाड़ी चढ़ाई थी। उसे जिस गाँव में जाना था। वह प्रदेश दायीं ओर के पठार पर दिखाई दे रहा था। वहाँ का एक तालाब स्फटिक की भाँति चमक रहा था। उसके चारों ओर जंगल होने पर भी उसके पार की हरियाली और खेत अत्यन्त आकर्षक थे। तीन ओर जंगल था। मध्य के दर्रे ने आगे बढ़ने पर कर एक मैदान का रुप ले रखा था। अरविंद की उस समय तक की थकान और ऊब उस दृश्य को देखते ही रफूचक्कर हो गयी। यह सोचकर कि अधिक से अधिक दस मिनट में वहाँ पहुँच जाएगा। वह अपने घोड़े को और भी उत्साह से चलाने लगा।

कैंप के सामने वेंकटरामय्या, गोपालय्या, शंकर नायक और गाँव के पाँच सात लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। दोपहर के एक बजे जाने पर भी अरविंद के न पहुँचने पर वेंकटरामय्या को घबराहट सी हुई। उन्हें अरविंद का उस रास्ते से आना पसन्द भी न था। उन्होंने उस एकाध बात से यह जता भी दिया था। वे सोच रहे थे कि इससे अधिक और कर भी क्या सकते थे। कई बातों में उन्हें अरविंद जिद्दी लगता था। वह अपने मनसे चलता था।

उनका मन एक ओर यह कहता कि यदि उसे कष्ट हुआ है तो उसने उसे स्वयं ही तो मोल लिया था। इसमें वे क्या कर सकते हैं ? पर वे दूसरी ओर उनका मन उसके कष्ट को सोच कर दुखी भी होता। वेंकटरामय्या के लिए वह केवल अधिकारी भर ही नहीं था। उनके बीच बढ़े सौहार्द ने उनके अधिकारी और मातहत के सम्बन्ध से ऊपर उठंकर उन्हें एक आत्मीयता के स्तर पर चिंतित होने को मजबूर कर दिया था। उसका एकांत जीवन उनके हृदय को और भी दुखी करता। वेंकटरामय्या उसके आगमन का रास्ता ऐसी आतुरता से देख रहे जैसे उनका कोई अपना आत्मीय ही आ रहा हो।

इतने में गोपालय्या बोला, "ओह हो ! देखो वे आ गये लगते हैं।

मैदान के उस पार चढ़ाई पर पहले घोड़ा दीखा, बाद में पाँच मिनट में अरविंद आ पहुँचा। वेंकटरामय्या के अलावा सबने उसका झुककर स्वागत किया। अरविंद ने भी मुस्कराकर नमस्कार किया।

वेंकटरामय्या ने पूछा, 'रास्ते में कोई तकलीफ तो नहीं हुई'

'तकलीफ तो नहीं हुई चलने में ही थोड़ी देर हो गयी थी। यह भी कोई रास्ता है, भगवान ही बचाए। वेंकटरामय्या कहना चाहते थे कि मैंने आपको पहले ही मना किया था, पर दूसरों के सामने कहना ठीक नहीं सोच कर चुप लगा गये। उसके बदले विनय पूर्वक पूछा, बहुत थक गये होंगे ?'

'ऐसा तो नहीं पर थकावट तो है ही। यह जगह बहुत अच्छी है वेंकट-रामय्या, वेरी गुड़। ये सब लोग कौन है ?"

वेंकटरामय्या ने वहाँ उपस्थित सब लोगों का परिचय कराया। अरविन्द ने प्रत्येक को नमस्कार किया और अंत में शाम को मिलेंगे। कहता हुआ अपने टेंट की ओर चला। जाते समय पूछा, इस जगह के बारे में जिन-जिन लोगों ने अर्जिया दी है उन्हें कब आने को कहा गया है ? तब वेंकटरामय्या ने बताया, दोपहर को कटाई का काम रहता है, सबको शाम को ही फुर्सत होती है, तब ही आने को कहा है। छः बजे बाद आयेंगे।

'अच्छा किया। खाना खाकर अब मैं दो तीन घंटे सोना चाहता हूँ।
रास्ता बहुत ही मुश्किल था वेंकटरामय्या और सवारी भी ढंग की नहीं थी। दूसरी तरफ से भी आया जा सकता था। कहते हुए जब अरविंद अपने डेरे की ओर गया तो बाकी लोग अपने अपने घर गये। वेंकटरामय्या गोपालय्या से तुम जरा जल्दी आ जाना, मैं यहीं रहूँगा। कह कर भोजन की व्यवस्था में लग गये।

अरविन्द वास्तव में थक गया था। वह ज्यादा से ज्यादा दस मील सफर करके आया था पर थकावट इतनी थी मानो इससे तीन गुना सफर करके आया हो। घोड़े की सवारी उसके लिए नई चीज न थी। पर वह यात्रा याद करे तो उसे लगा कि वह यात्रा न ढंग से घोडे पर थी न पैदल ही। इससे तो यदि वह पैदल चलता तो ज्यादा अच्छा था। आती बार उसने सोचा भी था कि ऐसी क्या बात थी जिसकी वजह से उसने इतनी कड़ी यात्रा का कार्यक्रम बनाया था। जो झगड़ा सुलझाना था वह भी इतना महत्वपूर्ण नहीं थी। फिर तहसीलदार ने कहा भी था कि कागज पत्र देखकर भी फैसला किया जा सकता है। फिर भी वह हठ से यहां आया था। इसक कारण क्या हो सकता है? पहले-पहले वेंकटरामय्या ने इस यात्रा के बारे में कुछ उत्साह दिखाया था। आखिर क्यों? क्षणभर को उसे सारा प्रयास उद्देश्यहीन सा लगा। अरविन्द का ऐसा सोचना केवल उत्साह कम होने के कारण नहीं था। किसी बात का महत्व जो आज रहता है वही कल नहीं रहता है। यह यात्रा भी ऐसी थी। अब आ गये हैं फिर इसकी चिंता क्यों? आने के बाद, आये क्यों? ऐसा सोचने से लाभ? जब वह ऐसा सोच रहा था तब वेंकटरामय्या ने सूचना दी कि भोजन की तैयारी हो चुकी है।

अरविन्द के आदेश अनुसार वेंकटरामय्या उस मामले से संम्बधित सारे कागजातों को लेकर साढ़े तीन बजे पहुंचे। मेज पर एक बड़े से नक्शे को फैलाकर पेंसिल से दिखाते हुए कहा, यह दो सौ दस, दो सौ ग्यारह, यहां

से दो सौ बारह नम्बर खत्म होता है। इसके बाद जंगल शुरू होता है। उसका कोई नम्बर नहीं है। झगड़ा इसी जगह को लेकर शुरू हुआ है।

पता नहीं अरविन्द उसमें कितना सुन रहा था। उसका ध्यान कहीं और था। उसे देखकर वेंकटरामय्या चुप हो गये।

'ओ, मैं कुछ और सोच रहा था। आई राम, साँरी खाता नम्बर एक सौ बारह के बाद की जगह हैं न ? तो आप उसका नम्बर ही नहीं कह रहे थे आप तो वन इलाके वालों का यह सहीं कहना ठीक है कि वह भाग उनका है।

'ऐसा कहा जा सकता है क्या ? इन लोगों के पास उसे अपना सिद्ध करने के लिए रिकार्ड है।

'ऐसा कितने लोग करते हैं ?'

'आठ ने तो अर्जी दी है।'

'आठ ? आठों के पास रिकार्ड है ?'

'उनका कहना तो यही। उन्होंने हमें नकल ही दी है। उनसे कहा गया है कि आते समय मूल प्रतियां लेते आये।'

'तो कागजात बाद में देखेंगे। मुझे तो एक प्रकार की ऊब सी लग रहीं है।' लगता है बहुत थक गये।'

'थकावट नहीं है। पता नहीं मन कुछ अजीब हो रहा। खैर ? काफी पीने के बाद हम घूमने क्यों न चलें ? ढलती धूप अच्छी रहती है। आप जिस तालाब का जिक्र कर रहे थे वह यहां से कितनी दूर हैं ?'

'एक या डेढ़ मील तो होगा।'

'आपने बताया था कि कहीं कैंप लगाएंगे ?

'पटवारी ने कहा था कि वहाँ जाना संभव नहीं है। पानी तक गाँव से ढोना पड़ता।'

'तालाब नहीं ?

'कहते हैं कि वहाँ पांव रखना भी मुश्किल है। कीचड़ ही नहीं,इसलिए झाड़-झंकाड़ भी बहुत बढ़ गया है। यहीं ठीक है।'

'अच्छा ? जगह यह भी अच्छी है। चलिए जरा घूम आयें। यहाँ बैठे-बैठे भी क्या करें ? आप नहीं चाहते हैं तो बता दीजिएगा। ऐसी बात नहीं है कि आप को भी आना ही चाहिए। मैं अकेला ही हो जाता हूँ।

'मुझे भी क्या काम है; चलिए। वहाँ तक हो आये।

'ठीक है।'

: ११ :

'कैंप वाली अमराई के पीछे से निकलकर दाईं ओर के मैदान से दोनों आगे जा रहे थे तब अरविन्द का मन कहीं और था। पता नहीं क्या बात होगी सोचकर वेंकटरामय्या चुपचाप कदम बढ़ाते जा रहे थे। इधर-उधर कटे धान के ढेर दिखाई दे रहे थे। दाईं ओर के खेत में फसल पक चुकी थी। उसे लाँघकर ऊपर जाने के बाद अरविन्द बोला,

"यहाँ कोई नाला था ? ऐसा दिखाई दे रहा है न ?

'नाला कहाँ से आया ? यह उस तरफ के किले की खाई लगती है।"

'यहाँ किला था ?'

'उधर देखिए। उन पेड़ों के उस तरफ पत्थर पड़े है न ? कहते है कि वह सब पुराने किले का अवशेष है पता नहीं किस काल का होगा......'

'किला किस का ?'

'यहाँ के लोग उसे जयवर्धन का किला कहते हैं ?'

'कौन सा जयवर्धन ? होयसलों में प्रसिद्ध......'

'वह किसी को मालूम नहीं है। पाँच सौ साल पुराना कहते हैं। इतना गिर गया है कि उसे देखकर बहुत पुराना बताते हैं। खाई भी भर गयी है।

'देखने के लिए यहाँ से अच्छा लगता है। उन झाड़ियों के परे तालाब होगा।'

'झाड़ियाँ कैसी, बीच में अच्छा खासा जंगल ही है। जब किला था तब यहाँ जंगल नहीं रहा होगा। इस खाईं के उस पार की जगह के लिए ही अब तकरार उठ खड़ी हुई है।'

'लगता है कि उस तरफ कोई खेती भी नहीं कर रहा है। खेती हो भी नहीं सकती है ? तो इतना झगड़ा क्यों कर रहे है ?

'सरकार के यह कहते ही कि वहाँ सागवान का बागान लगाया जाएगा। यह झगड़ा उठ खड़ा हुआ है। उन्होंने सोचा होगा कि उस पर स्वामित्व सिद्ध करने से कुछ न कुछ मुआवज़ा अवश्य मिलेगा। जहाँ तक मेरी जानकारी है कि उस जगह के बारे में किसी को वास्तव में लगाव नहीं है। वह शंकरनायक ही कल ऐसा कह रहा था।'

शंकरनायक कौन है ?'

'आज दोपहर को नहीं आया था न ? कुर्ता पहने'

'वे क्या तर्क देते हैं ?

'वह कहता है कि वह जयवर्धन का वंशज है। यह वह साबित करने के लिए भी तैयार है। वह कह रहा था कि यदि सरकार को उस जगह को जरूरत हो तो वह छोड़ने के लिए भी तैयार है।'

'ठीक है पर यह तो सिद्ध होना चाहिए न कि वह जगह उसकी है।'

'यदि यही बात हो तो वन इलाके के लोग भी क्यों आने लगे। मुआवजा देकर बागान लगाने की जरुरत भी नहीं पड़ेगी।'

'उस किले की जगह और इस तालाब का संबंध होगा। अगर किले की जगह उनका है तो बीच के यह खेत दूसरों के कैसे हो सकते है ?'

"उनका तर्क है कि पूर्वजों ने बेच दिये होंगे।

'तो उसके लिए रिकार्ड नहीं होने चाहिए क्या ?'

'इस मामले में यही तो समस्या है। किसी के पास भी सही रिकार्ड ही

नहीं। इतना ही बहुत है कि शंकर नायक इस बीच की जमीन को अपना नहीं बता रहा। यही खास बात है।'

'देखिए कौन-कौन क्या क्या कहेंगा। अब जरा तालाब तक घूम आयें ?'

'उस समय पाँच बज चुके थे। उतरती धूप फीकी पड़ने लग गयी थी। ज्यादा से ज्यादा आधे घंटे में सूर्य पश्चिम की पहाड़ियों के पीछे छिप जाएगा। वेंकटरामय्या को चिंता हुई यदि अंधेरा हो गया तो कैसे काम चलेगा, पर उन्होंने मना नहीं किया। वे बोले,

'जल्दी लौट आना चाहिए अंधेरा होने से पहले ही।'

'चाँदनी है न ? पूर्णिमा आज है या कल ?

"है तो कल ही फिर भी'

मैदान की तरफ से चलते समय प्रकाश मंद होने लगा था। कंटीली झाड़ियों को लाँघ कर आगे जंगल प्रविष्ट हुए तो बाहर प्रकाश होने पर भी घने पेड़ों की छाया में चलते समय ऐसा लगता था मानो झुटपुटे में चल रहे हो। पेड़ घने और लंबे-लंबे थे। जंगली कटहल और आम के पेड़ों की बड़ी शाखाए बाँहें पसारे खड़ी थीं। उन पेड़ों के वृहदाकार तने उस झुटपुटे में भयानक दिखते थे। उनकी छालों में पड़ी दरारों में गहरी हरे रंग की काई जम चुकी थी। इधर-उधर टेढ़ी सीधी बढ़ी लताएँ सामने आये तनों को लिपट कर आकाश से बातें कर रहीं थी। चटकी छालों वाले पुराने पेड़ बाहर से ऐसे लगते थे मानों मगरमच्छ के शरीर हो। पता नहीं किस जमाने में उन पेड़ों को किसी ने लगाया था या स्वयं उग गये थे। पर जो भी हो सैंकड़ों वर्षों से सर्दी, गर्मी, हवा, वर्षा आदि के थपेड़े सहते खड़े थे। इसीलिए अपने आकार और सामर्थ्य को पाकर खड़े उन वृक्षों को देखकर क्षणभर आदमी डर जाता था। कितनी पीढियां उनके सामने से गुजर गयी होगी। किस-किस रहस्य को वे अपने में संजोए हैं। यह सोचने पर वे और भी डरावने लगते थे। घनी छाया से अंधेरे से चलकर बाहर निकलने पर एक

विस्तृत तालाब दिखाई देता था। तालाब की हदबंदी से बीच पानी तक झाड़ियाँ उग आयी थी। एक ओर कमल की वेल फैली हुई थी। और सैकड़ों तरह के पौधे उग आये थे। इनके पावों की आहट से पक्षियों के झुंड डर कर पंख फड़फड़ाते दूसरे किनारे पर उड़ गये। चारों ओर एकांत घिर घिर कर आ रहा था। पहाड़ के उस पार सूरज कभी का छिप गया था। कहीं बीचों बीच तालाव में पानी दिखाई दे रहा था।

'अरविंद बोला और आधा घंटे पहले हमें आना था। उतरती धूप जब छनकर आती है तब सुन्दर रहता है।'

वेंकटरामय्या ने कहा, 'जी हाँ।' उन्हें लौटने का विचार सता रहा था।

'इतना बड़ा तालाब। वेकार पड़ा है। लगता है कि इस तरफ कोई भी नहीं आता।

'यहाँ तो लोग कदम रखने में भी डरते हैं।'

'ऐसा क्यों ?'

'वह सब मैं कहने लगूँ तो आप हँस देगें कि फिर से स्थल-पुराण शुरु हो गया।'

'बताइए। बताइए तो।'

'वह एक लंबी कहानी है। जब जयवर्धन उस किले में किले में रहता था तब वह तालाव उसके विहार का स्थल था। उसी कारण इसे 'मयूर ताल' कहते थे।'

'क्यों यहाँ बहुत मोर रहते थे ?'

'मोर रहे होंगे। पर नाम उस कारण से नहीं पड़ा। जयवर्धन की प्रेयसी चंपकमाला ने अपने विहार के लिए मयूर के आकार की नौका बनवा रखी थी।'

'जयवर्धन और चंपकमाला कितने सुंदर नाम है।'

'कहानी भी सुन्दर है। यहाँ के लोगों का कहना है कि वह मयूर नौका आजकल भी पूर्णिमा की रात को तालाब पर दिखाई देती है।

'ऐसा कोई है जिसने देखी हो।'

'लोग ऐसा कहते हैं। इसीलिए लोग यहाँ आने से डरते हैं।'

'डरते क्यों है ?'

'पहले कभी जब तालाब में पानी सूख गया था तब उस नावको खोदकर निकालने का प्रयास किया गया। दस बीस फुट खोदने पर एकदम चारों ओर की मिट्टी धंस गई तो उसमें काम करने वाले सभी उसी में समा गये। पता नहीं ऐसी और कितनी कहानियाँ है। वापस चले अंधेरा होने लगा।'

'कल ही पूर्णिमा है न ? तो हम ही क्यों न आकर देखें ?'

'यह सब ठीक नहीं है।'

'आपको डर लगता है ?'

'आधा मिनट रुककर वेंकटरामय्या बोले : चाहे अंधविश्वास कहिए, चाहे जो कहिए। ऐसी पृष्ठभूमि वाली जगहों में हमारे अनजाने में पता नहीं कौन कौन सी अगोचर शक्तियों का हाथ रहता है। यह कहने में मुझे संदेह ही नहीं है कि ऐसी शक्तियाँ रहतीं है। उनके संपर्क से भला भी हो सकता है और बुरा भी। कुछ भी निश्चित रुप से कहा नहीं जा सकता है। इस-लिए हमारा उनसे दूर रहना ही अच्छा है। मैं तो यहीं सोचता हूँ कि वापस चलें। रास्ता ढूंढकर जाना भी कठिन होगा।'

उनकी बातें अरविंद के मन पर कोई प्रभाव डाल नहीं रही थी। बात तो सुनाई दे रही थी। पर मन उनके अर्थ को ग्रहण करने में असमर्थ सा था। दूसरी कोई प्रिय बातें उसके कानों में गूंज रही थी। उस तरफ स्नान घाट सा दिखने वाले तालाब की सीढियों वह निहारता खड़ा रहा।

: ११ :

उसका मन सदियों से परे पहुँच गया था।

किसी जमाने का सुन्दर साम्राज्य उसकी आँखों के सामने था।

तालाब के किनारे के सभी पेड़ फूलों के भार से लदे थे। उनका प्रति-विंब प्रशांत जल में पड़ने से अपने सैकड़ों रंग से आँखों को चुंधिया रहा था। भरे और विस्तृत तालाब पर चाँदनी चिटक रही थी। उस चाँदनी में चमकती सीढ़ियों के समीप सोने के रंग की मयूर नौका लहरों पर धीरे धीरे बल खा रही थी। सामने उठा हुआ मयूर-मुख, उसके ऊपर की कलंगी चाँदनी में चमक रही थी। उस तरफ पाँच इस तरफ पाँच चमकते हुए चप्पू मोर के खुले पंखों जैसे चमक रहे थे। आकाश के बीच में चन्द्रमा झूल रहा था।

सीढ़ियों की ओर से एक युवक राजकुमार अपनी सुन्दर प्रेयसी का हाथ पकड़कर आ रहा था। उसके साथ खेलने की आतुरता साथ उसके मुँह पर एक आंतक स्पष्ट झलक रहा था। कही से छनकर आने वाली हवा में उसी समय विकसित होते पारिजात का परिमल चारों ओर फैल रहा था।

वह जयवर्धन ?

'आओ, चंपक, यदि ऐसे सुन्दर समय में नहीं तो इस नौका में हम और कब विहार करेंगे ? क्या मैंने तुम्हारे लिए ही इसे नहीं बनवाया था ?'

'नहीं महाराज, आज नहीं।

'आज पूर्णिमा है। देखो चन्द्रमा किस प्रकार हाथ हिला कर बुला रहा है।'

'चद्रमा तो अपनी प्रेयसी को बुला रहा है।'

'उसे बुलाकर उसने तभी नाव में विठा लिया है।'

'जहाँ वे है वहाँ हम कैसे जा सकते हैं ?'

'वे अपने आप में मस्त है। वे हमें देखेंगे नहीं।

'वह आपको कैसे मालूम ?'

'क्या वे यहाँ थे ? यहाँ देखो, पानीं में, आकाश में, फूलों के गुच्छों में, हर जगह वे हैं।' उनकी आँखें बचाकर हम प्रेम कर सकते हैं ?'

'उनसे तो नहीं पर घर वालों की आंखें बचाकर आये हैं।'

'उसके लिए तुम्हें डर है ?'

'डर भले ही न हो, आंतक तो है।'

'हम पति-पत्नी है।'

'यह बात आपको मुझे बतानी पड़ेगी ?'

'ऐसा लगता है कि तुम भूल गई हो। इसीलिए कहा'

'भूल गयी होती तो यहाँ तक आती ?'

'तो नौका में क्यों नहीं ?'

मुझे तो एक तरह की घबराहट होती है।'

'मेरे रहते तुम्हें घबराहट ?'

'सौंदर्य की भंयकरता के सामने आप क्या कर सकेगें ?

'मतलब ?'

'उस मयूर नौका से परे के सुन्दर पानी की गहराई के बीच में,……'

'तुम पगली हो,…… …वहां की नारंग कन्याएं तुम्हें ईर्ष्या की दृष्टि से देखती हैं ?'

'उनकी ईर्ष्या ही मुझमें घबराहट पैंदा कर रही है'

'घबराने की जरुरत ही नहीं है ?'

'तो हमारा आगमन उन्हें पता न चल सके अतः मैं अपने नुपुर उतार दूं'

'ठीक है। ऐसा ही करो।'

'परंतु चप्पू चलाने पर पानी में लहरें उठने की आवाज नहीं होगी ?'

'चप्पू चलाने की जरुरत ही नहीं है। हवा आप ले जाएगी।'

'किसे ?'

'मयूर नौका को'

'नहीं हमारे हृदयों को'

कहते चंपकमाला खिलखिला कर हंस पड़ी।

जयवर्धन ने बलखाती प्रेयसी को धीरे से पकड़कर नौकामें बिठाया। और स्वयं उसकी बगल में बैठ गया। उसके गालों को हाथ में पकड़कर उसकी मुं= का ओर टिकटिकी लगाकर देखा। मयूर नौका धीरे से पानी पर तैरने लगी। जिस प्रकार स्वप्न में मन तैरने लगता है, हवा में चांदनी तैरती है, अनुराग में हृदय तैरता है। नौका तैरती हुई आगे-आगे चलने लगी। उसको आगे चलाने वाली अदृश्य शक्ति उनके हृदयों में एक अंश बनकर, चारों ओर फैली चांदनी बनकर, धीरे से पीछे को जाता पानी बनकर, उस पानी पर नृत्य करने वाली प्रकाश बनकर, सुन्दर, सुगन्धित हवा बनकर नृत्य करने लगी। नौका में बैठे दोनों जनों को हाश नहीं था। वह नौका आगे-आगे तैरने लगी। सदियों से भी दूर चली गई। कहां ?

: १२ :

जहां खड़ा था वहाँ से स्तब्ध होकर सीधी दृष्टि से चारों ओर के जंगल का निरीक्षण करने वाले अरविंद को देखकर वेंकटरामय्या को एक क्षण के लिए भय हुआ। उसने सोचा गोपालय्या के कथनानुसार क्या वह माया से प्रभावित हो गया ? कातर होकर जरा जोर से ही वे बोले, 'चलें ? अंधेरा होने लगा है। उनकी बात ने अरविंद को सचेत कर दिया उसने 'हाँ चलें' कहाँ। उसके 'चले' कहते ही वेंकटरामय्या चल पड़े। अरविंद उनके पीछे बेमन कदम रख रहा था। चारों ओर की नीरवता जब भंग हुई तब ऐसा लगता मानो उस मौन की भाषा चार जबानों से बोल रही हो। वहाँ के प्रत्येक पौधे का प्रत्येक पत्ता, वहाँ के पानी की एक-एक बूंद, एक-एक मुंह होकर हजारों कहानियों को कहती सी भासित हुई। यदि सबको सुनने खड़े हो जाय तो आदमी वहीं जमकर वह भी एक पत्थर बनकर, पेड़ बनकर, पानी बनकर रह जाएगा। चारों ओर की वह भूमि जल; हवा, धुंधली चांदनी, देशकालातीत एक और ही प्रकार की दुनिया सी लगी। भूत वर्तमान और भविष्यत सब कहाँ एक से है। जमीन दूसरी नहीं है, हवा दूसरी नहीं है। अंधेरे की गोद में प्रकाश चमक रहा था, प्रकाश को अंधेरा खींच रहा था। उसने सोचा यह कौन सा लोक है ?

उस भावसमाधि से जागृत होने में अरविंद को दस मिनट तो लगे। वेंकटरामय्या बिना कुछ बोले चल रहे थे। उनके पीछे-पीछे चलते हुए धीरे-धीरे अरविंद का मन सही स्थिति को आ पहुँचा। उसे ध्यान आया कि उसे अपने कैंप लौटना चाहिए, उसके लिए जनता प्रतीक्षा कर रही है। दस

जगह ठोकर खाने और दस जगह झाड़ियों से उलझने के बाद वह पूर्णरूप से होश में आया। तब वह बोला, 'देर हो गई न? वेंकटरामय्या को सही रास्ता ढूंढकर चलना ही एक मुख्य काम था। वे आधे घंटे में, कैंप पहुंच गये। जैसाकि उन्होंने सोचा था गाँव के तीस चालीस लोग इकठ्ठे होकर उन्हीं की प्रतीक्षा कर रहे थे। सुरक्षित कैंप पहुंचने पर ही वेंकटरामय्या ने चैन की सांस ली।

उन दोनों को आते देखकर बैठे लोग उठ खड़े हुए और कुछ ने हटकर सम्मान प्रदर्शन किया। डेरे के सामने एक मेज और एक कुर्सी रखी गई। दस मिनट बाद जब अरविंद आकर बैठा तो लोगों ने उठकर फिर से नमस्कार किया।

अरविंद ने पूछा : केस से संबंधित सभी लोग आ गये हैं?'

'आ गये हैं, कहने पर एकत्रित लोगों को संबोधित करते अरविंद बोला :

'देखिए, इस केस के कागजात मैंने देखे हैं। इस जगह को अपना कहकर आठ लोगों ने तकरार की है? वे सब अलग-अलग है। जमीन सबकी नहीं हो सकती। आप सब कह रहे हैं कि सबके पास रिकार्ड है। उनकी नकलें मैंने देखी है। पर उन नकलों के आधार पर यह कहा नहीं जा सकता है कि आपका दावा ठीक है। जबानी तो जैसा चाहे कहा जा सकता है। इस जगह की अदला बदली या स्वामित्व का प्रश्न आज का नहीं है। इसलिए जिसके पास सही अर्थों में विश्वास करने लायक रिकार्ड है उन्हीं पर निर्णय करना पड़ता है। इसलिए एक एक करके आकर अपने रिकार्डों को हाजिर करें। सबसे पहले शंकर नायक का नाम है।'

शंकर नायक ने आगे आकर नमस्कार करके 'साहब मैं शंकर नायक हूँ। मैं जयवर्धन का वंशज हूँ। वहाँ जो किला है उसे जयवर्धन ने बनवाया था। इस बात से कोई इंकार कर नहीं सकता। यह हमारे घर की वंशावली है। इसमें बीस पीढ़ियों का उल्लेख है। कृपा करके देखिए।' कहकर पुराने

कागजों का पुलंदा वेंकटरामय्या के हाथ में दिया। उसे उन्होंने अरविंद के मेज पर रखकर खोला। खोलते समय वे कागज ऐसे लग रहे थे मानो वे समाप्त ही नहीं होंगे। कागज पीले हल्दी रंग के हो गये थे और उनका रंग ही बिगड़ गया था। पाँच छः जगहों पर दीमक खा गयी थी। उनकी लिखाई पर नजर दौड़ाते हुए अरविंद बोला :

'यह कोई पुरानी लिखाई है। आप ही पढ़कर सुनाइए।'

वेंकटरामय्या ने आदि से अंत तक पढ़कर सुनाया। उसमें जयवर्धन के पड़दादा की वंशावली से लेकर सैकड़ों नाम थे। अंतिम नाम शंकर नामक का था।

'ठीक है, इसके आधार पर आप यह कैसे सिद्ध कर सकते हैं कि आप इस वंश के हैं।'

'और क्या चाहिए? उस वंश वालों को वह अधिकार से मिलनी चाहिए।'

'ठीक है पर बीच में यदि उसका हस्तांतरण हो गया हो।'

'यह कैसे हो सकता है, साहब।'

'यह कौन कह सकता है? यह तो नहीं कि हुआ ही नहीं होगा।' इस आपके कागज में उस जगह का कोई उल्लेख है?

नहीं है। इसका मतलब क्या निकला?

'पर ऐसा कोई रिकार्ड नहीं है। जिससे यह पता चलता हो कि उसका हस्तांतरण हुआ है।'

बैठे बाकी लोगों को यह बात ठीक लगी। उन्होंने 'ठीक है, ठीक है "कहा। शंकर नायक का मुंह उतर गया।" और कोई हो तो ले आएं।" कहते वह पीछे हटा। आगे आते समय जो विश्वास था वह पीछे जाते समय नहीं था। बाद में आने वालों में एक ने एक सनद पेश करते हुए बताया कि उसके पड़दादा ने बागूर के नायक से वह किला और उसके आस पास की जगह जागीर में पाई थी। वह भी बदरंग पुराना कागज था। चार पांच

जगहों पर मोहरें लगी थीं। उसमें लिखा था 'इन्होंने जो सेवा की उसके लिए जयवर्धन के किले को और उसके आसपास की जगह को जल तरु निधि पाषाण समेत वंशपरंपरा के उपभोग के लिए दिया गया है।' बाद में आने वाले और एक ने ऐसे पुराने कागजात प्रस्तुत किए जिसमें यह उल्लेख था कि उनके पूर्वजों की सेवा के लिए हैदरअली से उन्होंने वह जमीन प्राप्त की है। उन पुराने कागजों और उस लिखावट का अवलोकन करते अरविंद को डर सा लगा; उसे शंका होने लगी कि क्या उन सभी कागजों का सच होना संभव है? और एक ने आकर एक कागज दिखाया जिससे यह प्रकट होता था कि शंकर नायक के पूर्वजों से उस जगह को सौ अशर्फियों में खरीदी गयी है। अंतिम यादों से अरविंद ने पूछा : मुझे सिर्फ यह निर्णय करना है कि यह जगह किसी व्यक्ति को है या सरकार की है। दो व्यक्तियों के बीच का झगड़ा रहे तो सिविल कोर्ट में जाएगा। इसलिए मैं तो केवल उन सनदों की वंशावली की जांच कर रहा हूँ जो मेरे सामने रखी गयी हैं। उनको पढ़ने से या देखने से यह कहना संभव नहीं हो रहा है कि वे सही हैं। कागज और लिखाई के समय को निश्चित करने के लिए विशेषज्ञों की सलाह लेनी है। उनके अभिप्राय मंगवाने के बाद निर्णय लिया जा सकता है।

इकट्ठे हुए लोगों को निराशा हुई होगी। शंकर नायक को अधिक भरोसा था। उससे कहा; ठीक है मालिक, ऐसी ही कीजिए, आगे उसने उस जगह पर उसके अधिकार को सिद्ध करने के लिए सही साक्षी उपस्थित करने के लिए मौका देने के लिए प्रार्थना की। बाकी लोग चुपचाप थे। यह बात नहीं कि अरविंद को उनकी ओर ध्यान नहीं गया हो। हैदर की सनद को पेश करने वाला अपने कागजात को लौटाने के लिए जोर दे रहा था। इससे अरविंद की और भी संशय बढ़ा। एकत्र लोग एक-एक करके मुजरा करके लौटने लगे। अरविंद उठकर अपने डेरे में गया।

लोग छँटने वाले थे कि गोपालय्या वेंकटरामय्या के पास आकर बोला : 'एक मिनट, कल लावणी वाले परशुराम के बारे में पूछा था न...'

'वह तो नहीं है न ?'

'उसका बेटा जो कहीं बाहर गया हुआ था आज दोपहर को लौटा है। वह अकस्मात मिल गया। तुम्हारी बात से तुम्हारे साहब को उसमें बड़ी दिलचस्पी है समझकर उससे पूछा उसकी आज्ञा होतो अवश्य गाऊंगा कहा।

'अच्छा गाता है ?'

'हां बाप का सा गला तो इसके पास नहीं है। फिर भी गा सकता है। यही है।

'तो पूछकर आता हूं।' कहकर वेंकटरमाय्या भीतर जाकर बोले,

'आज शाम को उस तालाब की कहानी बताई थी न उसकी लावणी गाने वाला भी एक है। पटवारी ने अभी बतलाया। यदि आप सुनने को तैयार हों तो...'

आराम कुर्सी में आराम से बैठा अरविंद उठ खड़ा हुआ।

'लावणी गाने वाला है ?'

पहले परशुराम नाम का व्यक्ति यहाँ अच्छी तरह गाता था। अब वह नहीं रहा। उसका बेटा थोड़ा बहुत गाता है।'

'तो जरूर बुलाइए। भोजन के बाद सुनेंगे। आपने जितनी कहानी बताई वही मेरे मन पर जम गई है।'

'दस बजे के लगभग बुलाऊं ?'

'अब नौ बज गये हैं। ठीक है ऐसा ही कीजिए।'

: १३ :

दस बजे तक अरविंद के डेरे के सामने गांव का गांव ही इकट्ठा हो गया था। यह सोचकर कि उसकी सलाह मान ली जाएगी गोपालय्या ने पहले ही लोगों को बता दिया था। दूसरे दिन ही पूर्णिमा थी। चारों ओर चांदनी ही चांदनी फैली हुई थी। हवा ज्यादा न होने पर सर्दी का प्रभाव शुरू हो गया था। अरविंद उसी के लिए रखी आराम कुर्सी पर गरम कपड़े पहनकर सामने बैठा था। पास वेंकटरामय्या बैठे थे। थोड़ी दूर पर गोपालय्या खड़ा था। उसे देखकर वेंकटरामय्या ने पास आकर बैठने के लिए कहा। अरविंद की इच्छा के अनुसार गैस-बत्तियां दूर रख दी गई थीं ताकि चांदनी प्रकाश में कोई बाधा न पड़े। लावणी के अनुकूल वातावरण अपने आप ही पैदा हो गया था।

लगभग तीस वर्ष का शिवु इकतारा लिए अपने साथियों के साथ आया और नमस्कार करके खड़ा हो गया। इकतारे पर दो बार उंगली चलाते ही लोगों का शोरगुल अपने आप शांत हो गया। तार पर हाथ चलने लगा तो उसके दोनों साथी सस्वर आ···आ ··करके आलाप लेने लगे। उनकी ध्वनि सुनते ही वहां एकत्र लोगों में कई कल्पनालोक में डूब गये। अरविंद ने आंखें बंद कर ली। शिवु ने आरंभ किया :

"हजार साल की बड़ी पुरानी
बड़ी सुंदर, बड़ी सुहानी है वह कहानी
गाता हूं सुनो रे सुनो रे यह कहानी
जयवर्धन चंपकमाला की

मयूर नौका की है कहानी
अरे सुनो रे सुनो
चंपक माला की कहानी बड़ी पुरानी।"

श्रीवर्धनराज ने बहुत ही सावधानी से पचास साल तक राज्य किया। वह बूढ़ा होने लगा। सदा लोकहित को ध्यान में रखकर राज्य संचालन करने से उसके राज्य में लोग धनधान्य से संपन्न और सुखी थे। उसकी इच्छा थी उसका एकमात्र पुत्र बड़ा होकर उसी के समान राज्य करे। जयवर्धन सुंदर युवक था। घुड़सवारी का बड़ा शौकीन था। वह वीर और शूर भी था। उसके बारे में उसके पिता को किसी प्रकार की चिंता न थी, भरोसे की कमी न थी। पर श्रीवर्धन को एक चिंता सता रही थी कि जवान वेटे का विवाह की ओर मन ही न था। दूर-दूर के राजाओं से और आस-पड़ोस रजवाड़ों से अनेक कन्याओं के संदेश आ चुके थे। पर जयवर्धन का मन उस ओर नहीं गया। राज्य ने ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा। उन्होंने कहा, उसका उस ओर मन न हो तो क्या ही हुआ? एक अत्यंत सुंदरी अपने आप इसका वरण करेगी। विवाह का योग भी जल्दी ही है।

इससे श्रीवर्धन को एक प्रकार की सांत्वना तो हुई पर उसे और एक चिंता सताने लगी। उसने एक दिन जयवर्धन को पास बिठाकर प्यार से कहा :

'देखो वेटे, मैं बूढ़ा होता जा रहा हूं। अव तुम्हें विवाह करके राज्य संभालना चाहिए। उत्तर की ओर से श्रीकंठदेव का संदेशा आया है। वे अपनी कन्या का विवाह तुमसे करना चाहते हैं। यदि तुम हां करो तो'

'जिससे मुझे विवाह करना है उसे मैं न देखूं।'

'देख सकते हो। उसमें क्या है? तुम मान जाओ तो उसका भी प्रवंध किया जा सकता है। पर हमें और शक महत्त्वपूर्ण बात की ओर ध्यान देना होगा।

'कौन सी?'

'तुम जानते हो कि हाल में हमारे समीपवर्ती रजवाड़े कुछ बदल से गये हैं। मैं बूढ़ा होता जा रहा हूँ यह बात व मुझसे ज्यादा जानते हैं। उन्हें मुझसे से ईर्ष्या भी है। बहुत समय तक वे चुपचाप बैठे नहीं रहेंगे।...हमारी सीमा भी सुरक्षित नहीं है। ऐसी परिस्थिति में शक्तिशाली श्रीकंठदेव से हमारा संवंध हो जाना सभी प्रकार से उत्तम है।

'राज्य की सुरक्षा की जिम्मेदारी आप मुझपर छोड़ दीजिए। परंतु उस लड़की को जिसे मैंने देखा नहीं; जिसे मन ने स्वीकार भी नहीं किया। उससे विवाह कैसे किया जाये?'

'अव तुम्हारी मर्जी है। मेरे मन में जो था वह मैंने कह दिया।'

यह कहकर श्रीवर्धन चुप हो गये। पर वे मनसे बड़े दुखी हुए। बेटे के विवाह और राज्य की सुरक्षा के बारे में उनका मन दुखी रहने लगा।

दक्षिण-रजवाड़े के देवराय की वेटी की सुंदरता की चर्चा चारों ओर थी। उसके लिए आसपास के सभी राजकुमार लालायित थे। जयवर्धन ने भी उसके बारे में सुन रखा था। परंतु पूर्वदिशा का शिवेश्वरनायक किसी प्रकार देवराय की लड़की से विवाह करने का प्रण कर चुका था। हाल में उसकी बढ़ती शक्ति को देखकर आसपास के सभी लोग भीतर ही भीतर उससे डरते थे। उसके संबंध से अपने स्थिति को और मजबूत करने के विचार से देवराय भी उसे अपनी बेटी को देने के लिए तैयार हो चुका था। परंतु जयवर्धन के समान उस लड़की ने भी स्पष्ट बता दिया था कि अपने पसंद के लड़के के अलावा किसी से विवाह नहीं करेगी। देवराय इकलौती बेटी को दुखी करना नहीं चाहता था। अंत में उसने स्वयंवर का प्रबंध करके असमास के राजाओं को निमन्त्रित किया।

उसके सौन्दर्य से प्रभावित कई राजकुमार आये। शिवप्पानायक जरा सजधज से आया। जयवर्धन भी आया। स्वयंबर की शर्तें भी विचित्र थीं। प्रतियोगी को अपने एक प्रिय फूल का नाम, एक प्रिय पक्षी का नाम, प्रिय रंग का नाम बताना था। अपने प्रिय उन तीनों का नाम लिखकर देवराय

की बेटी ने एक पेटी में रखवा दिया था। जो उन तीनों की सही बता दे वह उससे विवाह करने को तैयार थी।

राजवैभव से सजी उस सभा में प्रत्येक ने आकर अपनी प्रिय तीन वस्तुओं के नाम बताए और खाली लौटे। आगे आने वालों में शिवेश्वर नौवां था। उसने बताया :

प्रिय फूल मल्लिका है,

प्रिय पक्षी कोयल है।

प्रिय रंग हरा है।

देवराय की बेटी मुस्कराई और उसने सिर हिला दिया। शिवेश्वर हार कर निराश लौट गया। अब जयवर्धन अकेला बचा था। देवराय चिंतित हुआ कि यदि वह भी न बता पाये तो क्या होगा। उसे देखकर उसके लिए पूर्णरूप से बेचैन जयवर्धन भी चिंतित हुआ। पर धैर्य से आगे आकर बोला :

मेरा प्रिय फूल चंपा है।

मेरा प्रिय पक्षी मोर है।

मेरा प्रिय रंग आसमानी है।

देवराय की बेटी ने सिर झुका दिया। पास रखी चम्पा के फूलों की माला उसके गले में डाल दी। मंगलवाद्य शुरू हुए। उस दिन से चम्पकमाला जयवर्धन की प्रेयसी बनी। उसका नाम दोनों के लिए प्रिय था।

: १४ :

चारों ओर फैली निस्तब्धता को भेदकर दूर-दूर तक गूंजते गीतमें श्रुतिबद्ध एकतारे की ध्वनिमें डूबे अरविंद ने 'सुनो कहता हूँ चंपकमाला की कथा को' इस पंक्ति को शुरू करने पर कथा का यह भाग समाप्त हुआ समझकर आँखें खोली। गीत को रुकने की आधे निमिष की अवधि में ऐसा लगा मानों चारों ओर की निस्तब्धता ने झकझोर कर दिया हो। शारदा की याद अनिवार्य होकर लौट आई। चंपा के फूलों को ही वह भी चाहती थी। मोर की याद तो उसके हृदय को चुभ रही थी। गाजनूर के बाहर उस सायंकाल मोर देखने पर वह मोर की साथी एक मोरनी बनकर नाच उठी थी। अंत में मोर को देखने के उत्साह का दृश्य उसके आँखों के सामने नाच उठा। उस चित्र की आवश्यकता नहीं थी। वह उसे भूलने का प्रयास करने लगा। उसने सोचा यह कैसा विचित्र साम्य है? रंग के बारे में भी उसकी आशक्ति वैसी ही थी। वह सदा आसमानी रंग की साड़ी पहना करती थी। इसके मजाक करने पर उसने कहा था 'अनंत का रंग' है। वह सोचने लगा कि पता नहीं यह कहानी किस जमाने की है और चंपकमाला कौन है? उसकी पत्नी शारदा कौन थी? मन पता नहीं कहाँ-कहाँ भटकने लगा। गीत फिर से शुरू हुआ।

: १५ :

दूसरे दिन धूमधाम से विवाह हुआ। तीसरे दिन शाम को जयवर्धन अपने सफेद घोड़े पर अपनी चंपकमालाको बिठाकर हवा से भी हल्का गांव की ओर चल पड़ा। किले के पास भरे तालाब को देखकर चंपकमाला बोली :

'कितना सुंदर है यह तालाब'

सायंकाल के सुनहरे प्रकाश की क्रांति चारों ओर के पेड़ पौधों के अलावा जहां तक दिखाई पड़ता वहां तक फैली थी। जयवर्धन बोला :

'हां, तालाब सुंदर है। इस संध्या के प्रकाश में तो और भी सुंदर दिखता है।

"दूसरे एक प्रकाश में दूसरी तरह का दिखाई दे सकता है। वह भी सुन्दर लगेगा।" चंपकमाला बोली।

उसकी बात को समझते हुए भी जयवर्धन ने जानबूझ कर पूछा,

और कौन सा प्रकाश ?'

'जैसे आप जानते ही नहीं ?'

'नहीं। सचमुच नहीं जानता।' कह कर वह मुस्कराया।

'मुझसे ही सुनने का हठ है क्या ?'

'मुझे लगता है मुझसे कहलवाने का हठ तुम्हें है।'

'मेरा कोई हठ नहीं। चांदनी में यह पानी···सुन्दर लगता है न ?'

'लगता तो है पर डरावना भी लगता है।'

'उसका डरावनापन हम दोनों के रहने से कम हो सकता है।'

'हम उसे भूल सकते हैं पर कम नहीं कर सकते।"

'चाहे कोई भी हो ऐसा मस्ती का जीवन सदा प्यारा लगता है।'

'फिर भी कभी-कभी भय लगता है।'

'तुम अकेली हो तो भय हो सकता है। यदि हम दो जनें आयें तो देखो चंपक। पहली ही नजर में तुम्हें यह तालाब क्यों अच्छा लगा। मैं बता सकता हूँ।'

'क्यों ?'

'तुम्हारा प्रिय रंग आकाश में भी है। इस पानी में भी है, इसलिए।'

'तो ?'

'इस समय सामने न दिखाई देने पर भी यहाँ बहुत से मोर है।'

'सच ?'

'उधर दीखने वाले सब पेड़ चंपा के हैं।"

'पर मेरा एक विचार है।' यह कहकर चंपकमाला मुस्कराते हुए उसी को देखने लगी।

'वह भी सुंदर ही होगा जरा बताओ तो, सुने ?'

'संध्या के इस सुनहरी प्रकाश जैसी और चांदनी का रूपहलापन लिए एक सुंदर मयूर की आकृति कीं नौका तैयार करा कर इस पानी पर तैरानी चाहिए।'

'क्या खाली उसे तैरा कर हम खड़े होकर उसे देखते रहेगें ?'

'उसमें हमें बैठकर पूर्णिमा के दिन घूमने जाना चाहिए।'

'कहाँ ?'

'दूर-दूर बहुत दूर।'

'यह कौनसी बड़ी बात है। जल्दी ही तैयार करा देता हूं। और क्या चाहिए ?"

'आपके रहते मुझे और क्या चाहिए ?'

'क्या मुझे सदा तुम्हारे पास ही बैठे रहना होगा ?'

'आपका हृदय भर रहे यही बहुत है।' कहकर उसने जयवर्धन की छाती

पर सिर रख दिया। पहाड़ के पीछे सूर्य के डूबने से पहले वे लोग किले में पहुँच गये। वहाँ भी स्वागत का आयोजन सम्पन्न हुआ।'

अगले एक महीने में सुनहरी रंग वाली रुपहला प्रकाश लिए एक मयूर नौका तैयार हो गयी। तालाब के किनारे स्नान के लिए एक घाट था, उसके ऊपर एक छोटा सा महल बनाया गया। यह सब देखकर ढलती आयु के श्रीवर्धन ने बेटे को चेतावनी दी, रात के समय ऐसी जगह पर नहीं जाना चाहिए। और कोई बात भले ही न हो पर चंपकमाला को नजर लग-सकती है। उसके सौन्दर्य को चांदनी में पानी के नीचे से देखकर नाग कन्याएं ईर्ष्यावश कुछ अनाहूत न करें।'

यह बात चंपकमाला ने भी सुनी। दोनों निराश हुए। पर आतुरता को रोक पाना भी साध्य न था। चोरी-चोरी जाना पड़ता था। जाते समय चंपकमाला अपने नूपुर उतार कर रख देती थी। कदमों की आहट भी किसी को सुनाई नहीं देती थी। वे लोग बिना बात किए चुपचाप छायाओं की भाँति चलते थे।

वसंत ऋतु की एक पूर्णिमा की रात थी। चंपकमाला ने पूछा, 'आज रात वहां न चलें ?'

'आज नहीं। क्या तुम जाना ही चाहती हो ?'

'अगर आपको नहीं चाहिए तो न सही···पर आज पूर्णिमा है न ?'

'तुम पास हो तो सदा पूर्णिमा है।'

'तो दो पूर्णिमा एक साथ आ गयी। दो चार निमिष को होकर आ जायें ?'

'ऐसी क्या आतुरता है ?'

'मोरपंखी रंग का पानी देखने को मुझे सदा आतुरता बनी रहती है। पूर्णिमा की चांदनी में लहराते पानी के आकर्षक को मैं क्या बताऊं? मुझे तो सदा वहां बने रहने की इच्छा होती है।"

'सदा ?'

'हां सदा। मुझे लगता है, मुझमें और इस तरह के तालाब में कोई पुराना संबंध है।'

'ऐसा क्यों कहती हो?'

'विवाह से पूर्व की रात मैंने एक स्वप्न देखा था। इसी तरह का तालाब था। एक मयूर नौका भी थी।'

'यह सब तुम्हारे मन की सुप्त इच्छाएँ हैं। मन में जो रहता है वही स्वप्न में दिखाई देता है।'

'मन की हो या स्वप्न या भाग्य की बात कौन बताए?'

'भाग्य का मतलब?' कहते हुए जयवर्धन हंस पड़ा।'

'भाग्य का अर्थ है जो आँखों को दिखता नहीं पर हाथ पकड़कर ले आता है।'

'पर हाथ तो पकड़कर मैं लाया हूँ।

'पर पहले पकड़ने वाली तो मैं थी। या शायद ऐसे कहना गलत होगा। मेरे हाथ को आपके हाथ में पकड़ा कर एक अदृश्य हाथ यहाँ ले आया।'

'हो सकता है। मेरी समझ में नहीं आता।' कहते हुए जयवर्धन मान गया।

'मेरी समझ में आता है। लेकिन इस समय वहां जाने को मना करना मेरी समझ में नहीं आता। थोड़ी सी देर को ही तो वहां जाने को कह रही हूँ।' कह कर उसने बनावटी गुस्सा दिखाया।

वे लोग मयूर नौका पर पहुंचे तो आधी रात हो चली थी। आकाश में चंद्रमा झूम रहा था। मोतियों के फूल सी चांदनी संपूर्ण संसार पर फैली थी। कानन में माया का साम्राज्य था। लहराता पानी चमकदार शीशे सा था। आसपास के वृक्ष खिलती कलियों के भार से लदे थे। ऐसा लगता था मानो वे उनका स्वागत सा कर रहे थे। हवा उनके कानों में प्रेम के गीत सुना रही थी। ऐसी अलौकिक सौंदर्य उनके होशोहवास भुलाए दे रहा था। नौका विहार में चंपकमाला, अपने हृदय के भाव गीतों के रूप में लुटा रही थी। उसके बालों में लगे चंपा के फूलों की सुगंध उन्मादकारी हो गयी थी। हवा मूर्च्छित सी होती जा रही थी।

: १६ :

यहाँ पर पहुँच कर गीत का दूसरा भाग समाप्त हो गया। सुनने वाले एकदम मूक बैठे थे। बढ़ती हुई सर्दी की ओर किसी का ध्यान ही नहीं था। अरविंद तो पूर्णरूप से अपनी सुधबुध ही भूल गया था। वह तो स्वप्नलोक में जयवर्धन बना हुआ था। शारदा की याद उमड़ घुमड कर चली आ रही थी। नयी नयी शादी का एक-एक दृश्य आँखों के सामने नाच रहा था। शारदा उसके अंतरमन पर पूर्णरूप से वैसे ही छा गयी थी जैसे जय-वर्धन के मन पर चंपकमाला।

बेंगलूर में विवाह बड़ी धूमधाम से संपन्न हुआ था। लड़की के पिता नागेश्वरराय संपन्न व्यक्ति थे। इसलिए किसी भी बात को कमी नहीं हुई। शादी के तीन दिन तक तो वह किसी राजकुमार से कम न था। वैसे देखा जाय तो उसके परिवार की हैसियत साधारण ही थी। परंतु नौकरी से पाये नये पद के अधिकार के कारण वह उनकी बराबरी पर ही था, और इससे भी अधिक लड़की वालों ने उसकी भविष्य की हैसियत को भी ध्यान में रखकर सब काम निभाया था।

विवाह के दूसरे दिन वह शारदा के साथ कोडाई केनाल गया था। वहाँ नौका विहार के लिए बैठते समय शारदा ने क्या कहा था?

'इस बारे में मैंने सैकड़ों स्वप्न देखे थे। यहां कभी न कभी एक बारमें आने की इच्छा थी; आ ही गयी। और आना भी सार्थक हो गया।'

'क्या तुम्हें नौका विहार करना बड़ा पसद है?'

'इसमें पूछने की तो बात ही नहीं है। मुझे तो सदा इसी तरह रहने की इच्छा होती है।'

'इस तरह का मतलब ?'

'पानी पर ही रहने की।'

'अब हमारी शादी हो चुकी है। हम तो घूमने आये है। जीवन भर कहां इस प्रकार रहना संभव है ?'

'क्यों नहीं है ?'

'यह दूसरी बात है। यह तो हमारी इच्छा की बात है। सब कुछ हमारी इच्छानुसार ही नहीं चलता। हम इस धरती के निवासी हैं, स्वप्न-लोक के नहीं।'

'अब तो मेरा स्वप्न सत्य हो गया है। आगे क्या होगा कौन जाने ?'

'आगे की बात इस समय क्यों ?'

'मुझे सदा उसकी चिंता रहती है।'

'कौन सी चिंता ?'

'आप अपने काम के लिए महीने में दस बीस दिन दौरे पर चले जाएंगे तो मैं अकेली कैसे रहूंगी ? यह एक चिंता का विषय है।'

'इसका निवारण बहुत सरल है।'

'क्या है इसका निवारण ?'

'मेरे साथ तुम भी चला करो ? और क्या ? आज का सा यह घूमना सदा जारी रह सकता है।'

'पर हर जगह पानी और नौका मिलेगी क्या ?'

'यह तो बहुत मुश्किल है।'

'मुझे तो इसी की इच्छा है। बिना पानी कौन सी जगह सुन्दर लगती है ?'

दूर दूर तक फैले पानी को या बहते पानी को देखना भी कितना प्यारा लगता है।'

'प्यारा तो है पर मुझें तो पानी देखकर डर सा लगता है।'

'अब भी डर लग रहा है क्या ?' कहती हुई वह खिलखिला कर हंस पड़ी थी।

'इस समय तुम साथ नहीं हो क्या ?'

'यदि मैं न रहूं तो ?'

'तो मुझे न पानी चाहिए न नौका।'

'क्या आप सच कहते हैं ? कभी कभी गहरे पानी को देखकर डर सा लगता है। ऐसा लगता है उस गहराई में कोई शक्ति अपनी ओर खींचती हो।'

'इसीलिए पानी के पास नहीं जाना चाहिए ?'

'वही बात है तो मैं आपके साथ कभी दौरे पर नहीं चलूंगी।'

'तो इसका मतलब यह हुआ कि आगे होने वाले झगड़े की यह भूमिका है।'

'झगड़ा-वगड़ा क्या ? मैंने तो ऐसे ही कहा।'

वहां बिताये एक सप्ताह के कई चित्र उसके आंखों के सामने घूम गये।

'यदि मैं न रहूं तो ?' उसने सहज रूप से जो प्रश्न पूछा था उसका आज दूसरा ही अर्थ निकला था। उस प्रश्न के पीछे छिपा दर्द चित्रमाला बनकर आँखों से ओझल हो गया था। गीत पुनः शुरू होने वाला था।

: १७ :

गीत का तीसरा भाग शुरू। उसके पिछले भाव के अनुकूल ही उसकी भी गति थी। जयवर्धन और चंपकमाला ने मयूर नौका में जो विहार किये थे उन रातों की कोई गिनती नहीं थी। धूप में, चाँदनी, संध्या के मंद प्रकाश में, रात की रमणीयता में, दिन में और रात में, वे दोनों लीन हुए उस नौका से एक दूसरे से अलग नहीं होते थे।

चंपकमाला को आये एक वर्ष से ऊपर हो गया। सरदी के एक दिन श्रीवर्धन ने अपने प्राण त्याग दिए। सारा राज्य शोक में डूब गया। जयवर्धन में विश्वास रखकर जनता शोक में भूलने लगी। परंतु जयवर्धन राज्य की अपेक्षा चंपकमाला के यौवन में सुधबुध खो बैठा था। अब उसे किसी का डर नहीं था। इसका परिणाम यह हुआ कि तालाब के पास एक छोटा राजमहल बन गया। रत्नदीप वहाँ चमकने लगे। किले के महलों में दीप मद्धम पड़ने लगे। यहाँ के बुजुर्गों को और आत्मीयों को इससे दुख होने लगा। राजसभा में भी जयवर्धन का जाना कम हो गया, एवं मंत्री और अधिकारी घबराये से राज्य के बारे में चिंता करने लगे।

जयवर्धन के मंत्रियों के बीच मंत्रणा हुई। निश्चय किया गया कि उसे सचेत करना चाहिये। वरिष्ठ मंत्री ने तीन दिन तक किले में जयवर्धन की प्रतीक्षा की। अंत में चौथे दिन उससे मिलने के लिए उन्हें उस छोटे महल में जाना पड़ा। उसका स्वागत करके पूछा :—

'क्या बात है? मंत्री महोदय को यहाँ तक आना पड़ा। कोई खास बात है।

'विशेष तो कुछ नहीं है महाराज परन्तु आप से एक बात निवेदन करने के लिए मैं आया हूँ। आपकी आज्ञा हो तो निवेदन करूँ।'

'इसमें घबराने की क्या बात है ?

'वह आपकी व्यक्तिगत बात है। पर वह राज्य से भी संबंध रखती है।'

'बात क्या है ?'

'आप राजसभा में आजकल आ नहीं रहे हैं। इसलिये सबको घबराहट हुई है।'

क्या आप सब लोग नहीं है ? आप जैसे दक्ष अधिकारियों के होते यदि मैं नहीं आऊँ तो क्या हुआ ?'

'महाराज क्षमा करें। ऐसे कहना ठीक नहीं है। सभा में आप की उपस्थिति से सभा को एक शक्ति प्राप्त होती है। जो निर्णय किये जाते हैं उनके पीछे अधिकार का बल रहता है। इसके अतिरिक्त एक दो महत्वपूर्ण विषयों के बारे में हमें होशियारी से कदम रखना है।

'कौन सा विषय ?'

'शिवेश्वर नायक अपनी सीमा पर कुछ गड़बड़ कर रहा है।

'कैसी गड़बड़'

'हमारे चार गाँवों को अपना बनाकर वहाँ की जनता को तंग कर रहा है।'

'यह कैसे संभव है ?'

'वह ताल ठोककर झगड़ा करना चाहता है।'

'यह बात मुझे मालूम है। उसे मुझसे चंपकमाला के कारण ईर्ष्या है। स्वयंवर में हारने के बाद मेरे बारे में उसे असंतोष है।'

'यदि असंतोष होता तो कोई बात नहीं थी। पर वह बदला लेना चाहता है।'

'क्या गुप्तचरों से ऐसी सूचना प्राप्त हुई है ?'

'जी हाँ महाराज, इतना ही नहीं, ऐसा लगता है कि वह अपनी सेना को मजबूत कर रहा है।'

'अच्छा तो बात यहाँ तक पहुँची गयी । तो हमें उसे सही रास्ता दिखाना पड़ेगा ।'

'आपको निर्णय लेना है । आपके बिना हम क्या कर सकते हैं ?'

'कैसी बात कहते हैं मंत्री जी ? मैं क्या नही हूँ ?

'क्षमा करें । आप यही रहे तो बात बनेगी नहीं । राज्य कष्ट में है । मैं ज्यादा कह नहीं सकता । ऐसा कुछ भी नहीं जो आपको मालूम न हो ।'

'ठीक है, समझ गया । मैं आ जाता हूँ । सेनापति से मुझसे तुरन्त मिलने के लिए कहिए ।'

'कहता हूँ ? पर एक बात…'

'क्या बात है, मंत्री जी ?

'अत्यन्त गुप्त बात है । उसके साथ इसके बारे में चर्चा करने से पहले यह सोच लेना आवश्यक होगा कि उस पर भरोसा कहाँ तक रखा जाये ।'

'आप कैसी बात कहते हैं ?

'उस पर मुझे पहले का सा विश्वास नहीं है । मैं यह सोच कर कह रहा हूँ कि आपसे निवेदन किये बिना रहना नहीं चाहिये । परिस्थिति अत्यन्त गंभीर है ।'

'आप जो कह रहे हैं क्या वह सच है ?'

'उसे सत्य सिद्ध करने के लिए प्रमाण है ।'

'आपका कहना है कि वह भी उनसे मिल गया है ।'

'यह मैं कैसे कह सकता हूँ ? संदेह के लिए प्रमाण है, इतना ही मैं कह सकता हूँ ।

'यदि ऐसा है तो…'

'जल्दबाजी में, आवेश में आकर कोई निर्णय नहीं लेना चाहिये । पहले आप किले में पधारिये, बाद में तीनों मिलकर मंत्रणा कर सकते हैं ।'

जयवर्द्धन में अभिमान उमड़ पड़ा । अभिमान क्रोध में बदल गया । उसने सोचा चंपकमाला के साथ सारा समय बिताने से उसे सुनना पड़ा कि

कर्तव्यच्युत हो गया है। मंत्री महोदय जिस उद्देश्य को लेकर आये थे उसमें उन्हें सफलता मिली।

चंपकमाला उनकी सारी बातें ओट में से सुन रही थी। जब वह उसके पास आई तो वह उद्विग्न था। तब तालाब, पानी, नौका चंपकमाला सभी उससे ओझल हो चुके थे। पिता द्वारा साम्राज्य की रक्षा का प्रश्न ही उसे घेरे शिवेश्वर नायक पर के क्रोध ने उसके पौरुष को ललकारा था।

चंपकमाला के आगमन की ओर उसने ध्यान नहीं दिया था। जब वह उसके पास आकर बैठी तभी उसे होश आया।

'चंपक ने पूछा, 'क्या बात है महाराज ?'

'जयवर्द्धन बोला नहीं। उसकी सारी दृष्टि पूर्व दिशा की ओर लगी थी। अपने शत्रु के अलावा उसे और कुछ भी दिखाई नहीं दे रहा था। चंपकमाला ने उसके गालों को सहलाते हुए धीमे से पूछा :

'किस बात का असंतोष है, महाराज ?'

उसने गरजकर कहा, 'असंतोष नहीं। युद्ध, युद्ध।

'जरा शांत हो जाइए, महाराज ? कैसा युद्ध ? ऐसी क्या बात हो गयी ?

'शिवेश्वर नायक के बुरे दिन आये हैं ? मुझसे युद्ध करना चाहता है।'

'उसके बुरे दिन क्यों आ गये ?'

'ऐसा ही लगता है। मुझे हराकर तुम्हें जीतना चाहता है।

'मुझे जीतेगा ? इस जन्म में वह संभव नहीं है। पर मुझे एक दुख है। मेरे कारण इस युद्ध की बात उठी।'

'एक राजा का युद्ध से कभी छुटकारा हो सकता है ?'

'यह राज्य के लिए नहीं है न ?'

'राज्य के लिए न सही राज्य लक्ष्मी के लिए सही। वह मूर्ख सोचता है कि एक हो तो दूसरी स्वयं आ ही जाती है। उसे तो दोनों ही नहीं मिलेंगे। तीसरी जगह पहुँचेगा। बस यही होगा ?'

'मुझे यहाँ आना ही नहीं चाहिए था'

'कैसी बात कहती हो, चंपक ?

'यह किसके वश की बात है ? एक बार तुमने ही नहीं कहा था । तुम्हें यहाँ लाने में किसी अदृश्य शक्ति का हाथ है ।

'मेरे कारण इतना कष्ट ।'

'कष्ट तुम्हारे कारण नहीं आया । पर तुम्हारे यहाँ आने से हुआ है । और तुम्हारा यहाँ आना तुम्हारे हाथ में न था । तुम क्यों बेकार में सोचकर आँसू बहाती हो ।'

'आपके कष्ट के बारे में मुझे नहीं सोचना चाहिए ।

'सोचने से कोई लाभ नहीं है, चंपक । जो सामने है उसका मुकाबला करना हमारा कर्तव्य है । दुश्मन को दंड देना ही है । चाहे जो भी हो ।'

'ऐसे लोगों को यहाँ तक आने का मौका नहीं देना चाहिए । हम ही लोगों को पहले…'

'हम ही पहले हमला कर दें ?'

'क्यों न करें ?'

'वह न्याय नहीं होगा, हमें अपनी तैयारी करते रहना चाहिए ।'

'वह नायक बड़ा बलवान है ?'

'वह ऐसा ही समझ रहा है'

'ऐसा कहना तो आपका धैर्य व्यक्त करना है । मंत्री जी ने यह नहीं कहा कि वह अपनी सेना को मजबूत कर रहा है ।'

'उसकी चिंता तुम न करो । तुम्हें घबराने की कोई जरूरत नहीं है ।'

'आपके होते हुए मुझे कोई भी घबराहट नहीं है ।'

'बस इतना धैर्य रहे तो बहुत है ।'

'इतना ही क्यों ? मौका आने पर आप ही देख लेंगे ।'

'क्या मैं अपनी चंपकमाला को नहीं जानता ?'

'पर उसे मालूम नहीं है । इसीलिये उसने गलत रास्ता पकड़ा है ।

'पकड़ने दो । वह उसका फल भोगेगा । उसकी चिंता हम क्यों करें ?

अभी तो हमें अपने बारे में सोचना है।' कहते हुए उस दोपहर में पहली बार वह हँसा।

'अब हमें क्या सोचने को है?'

'यह सब मुँह में बताने की मुझे आदत नहीं। कल सुबह हमें मिलने जाना है। आगे की बात बाद में सोचेंगे। तब तक आज मयूर नौका में अंतिम बार...'

'अंतिम बार क्यों कहते हैं? ऐसी अशुभ बात क्यों मुँह से निकालते हैं, महाराज।'

'उसे अशुभ मानने की जरूरत नहीं चंपक। वास्तव में यह एक सच्ची बात है। कल क्या होगा किसे पता है? हमें इतना ही पता है कि वह हमें मालूम नहीं। बस आज ही सच है। इसलिए।'

'इसलिए क्या?'

'युद्ध की तैयारी हो।' कहते हुए उसनें प्रेम से उसके गाल को थपथपाया। परन्तु चंपकमाला के मन को संभालने के लिए कुछ समय चाहिए था।

: १८ :

उस रात को जयवर्धन और चंपकमाला मोरनौका से जब बाहर आये तब रात ने प्रकाश की ओर अपना मुँह घुमा लिया था। पौष मास की सरदी आकाश से उतर रही थी। दशमी का चाँद म्लान होकर किले की परली ओर दिशा की में उतर रहा था। पेड़-पौधे उस म्लान प्रकाशमें कांतिहीन हो रहे थे। ऐसा लग रहा था मानों पानी पर एक प्रकार की कराल शांति छाती जा रही थी। उन सबकी ओर ध्यान से देखकर चंपक बोली—

'प्रिय मुझे कुछ डर सा लग रहा है।'

'कैसा डर चंपक ?'

'अब तक चमकते उस पानी को देखा ? अब वह रंग खोकर कैसा भयावह लग रहा है ?'

'चाँदनी के घटते ही ऐसा होना सहज नहीं ?'

'तो उसे देखने की ही जरुरत नहीं।'

'यह संभव है ? तो यहाँ आएँगे ही नहीं ?'

'मैंने ऐसा कहाँ कहा ?

'तो हम फिर कब आयेंगे ?'

'पूर्णमासी की पूरी चाँदनी में।'

'उतने में यह सब समाप्त हो जाएगा ?'

'सब समाप्त हो जाएगा। आगे समाप्त होने के बाद ही हम यहाँ आयेंगे।'

'हाँ, मन प्रसन्न रहेगा।

'तुम्हें भरोसा नहीं होता है ?'

'ऐसा कदापि नहीं, केवल अनिश्चितता है।

'तो धैर्य से रहो। कहते उस समीप खींच चंपकमालाने आँखें बन्द कर ली। उसकी आँखों के सामने भविष्य का कौन सा चित्र दिखाई दे रहा था, यह कौन कहे।

: १६ :

दूसरे दिन प्रातः के लगभग दस बजे जयवर्धन अपने वरिष्ठ मंत्री से लंबी चर्चा में मग्न था। जयवर्धन ने कहा :

'मैंने सेनापति से बात की। उसने कहा कि सारी तैयारियाँ की गई है। आपने जो सूचना दी थी उस संदेह को पुष्ट करने के लिए उसने कोई अवसर नहीं दिया।

'उसने बड़ी सावधानी से बात की होगी।'

'आप का मत है कि उस पर विश्वास नहीं किया जा सकता है।

'मेरा तो यही अभिप्राय है, इस पर महाराज जैसा चाहें।'

'ऐसा नहीं कहिए। इसमें जितनी जिम्मेदारी मेरी है उतनी ही आपकी भी है, यह नहीं भूलिए। यह सबके हित का प्रश्न है।'

'इसीलिए मैंने अपना संदेह व्यक्त किया था। परसों रात को उस तरफ जाने के बारे में आपने उससे पूछा ? उसने उसका जवाब क्या दिया ?'

'उसने कहा कि उस तरफ की सीमा तक जाना सच था। वहाँ की तैयारी की जानकारी लेने के लिए गया था।'

'पर यदि यही बात होती तों आधी रात को चलकर सुबह तक लौट जाना नहीं चाहिए था।

'उसने ऐसा इसलिए किया होगा। ताकि उस तरफ किसी को मालूम न पड़े।'

'अथवा इस तरफ को ?' कहकर मंत्री ने अपना संदेह व्यक्त किया।

'देखिए मुझे तो उसके बारे में कोई पक्षपात नहीं है। यदि संदेह की

दृष्टि से देखें तो सब दूसरे ढंग से दिखाई देता है; इसलिए मेरा कहना यही है कि ऐसी व्यवस्था रखनी चाहिए जिससे उस पर विशेष निगरानी रखी जा सके। अब कोई तुरन्त कदम उठाना तो कठिन है। पर यदि ऐसा किया जाय तो उससे हमें ही अधिक अड़चन होगी। और दो तीन दिन देखें। ऐसी कोई बात दिखाई दे तो सेना का अधिकार मैं अपने हाथ में लेता हूँ; ठीक है?'

मंत्री को तसल्ली नहीं हुई। पर ऐसा भी नहीं कहा जा सकता था कि जयवर्धन की बात न मानी जाये। चिंतित होकर वह वहाँ से लौटा।

: २० :

आगे दो दिन सब शांत था। कोई भी खबर नहीं आई। आक्रमण की सूचना भी नहीं आई। राजा सेनापति से सीधी चर्चा किए बिना किले की रक्षा के लिए आवश्यक प्रबंध अपने आप कर रहा था आसपास के प्रदेश के बारे में जो प्रबन्ध करना था उसे करने के लिए सेनापति को राजा की आज्ञा माननी पड़ती थी। उसे ऐसा नहीं लगा कि राजा उस पर पूरा विश्वास कर रहा है। आधे असमाधान से और आधे भय से उसे राजा की आज्ञा माननी पड़ती थी। जयवर्धन यह सोच ही रहा था कि हमला अवश्य होगा। पर उसका यह भी विचार था कि चाँदनी रातों में आक्रमण नहीं होगा और दस पन्द्रह दिन है, तब तक उचित प्रबन्ध करना चाहिए। परन्तु दूसरे दिन सायंकाल के समय सेनापति घबराया हुआ सा आकर राजा से मिला और बोला,

'ईशान्य दिशा की ओर से हमला हो गया है, महाराज'

'जयवर्धन को संदेह हुआ। उसका विचार था :कि यदि हमला होना ही था तो पूर्व दिशा से अथवा उससे भी पीछे से होना था। अतः उसने पूछा,

'ईशान्य दिशा से ?

'हाँ महाराज, पाँच सौ से भी अधिक घुड़सवार है।'

'सच ?'

'यह खबर अभी आई है। यदि हम उस तरफ अपनी सेना न भेजे तो अनर्थ हो सकता है। उस तरफ सेना भेजने के लिए महाराज की आज्ञा मिलनी चाहिए।'

'पाँच सौ सवार तो भेजिए पर उसका नायकत्व कौन करेगा।

'मैं ही जाता हूँ। हमला भयानक है।'

'आपको जाने की जरूरत नहीं है। आप यही रहकर दूसरी व्यवस्था देखिए। आवश्यकता पड़े तो मैं ही वहाँ तक जाकर देखता हूँ।'

'वैसा करना हित में सम्भव नहीं होगा।'

'उसकी चिंता आप न कीजिए।'

'यदि आप ही जाएँगे तो मैं यही रहता हूँ।'

'ठीक है। ऐसा कीजिए। सेना कूच करें। मुझे कब जाना है यह बाद में निश्चय करूँगा। आपको वहाँ जाने की जरूरत नहीं है।'

अन्तिम बात ने सेनापति में तीव्र असन्तोष उत्पन्न किया। पर कुछ भी तो किया नहीं जा सकता था। सुबह तक चुने पाँच सौ से भी अधिक घुड़सवार जयघोष के साथ ईशान्य की ओर कूच कर गये।

: २१ :

गीत तेजी से जारी था। आगे बढ़ती सेना के जोश से भरी बातें वर्षाकालीन पानीके समान आगे बह रहीं थीं। इकतारे के तार से झंकार निकल रही थी। गीत की गति के अनुसार डफली वज रही थी। उससे रणकोलाहल प्रतिध्वनित हो रही थी। चारों ओर के लोग मंत्रमुग्ध से बैठे थे। अरविंद आँखें बन्द किए बैठा था। गीत आगे जारी था।

'रात का पहला पहर खतम होने को था। जयवर्धन राजमहल के सौध के ऊपर ऐसे इधर से उधर घूम रहा था मानो किसी काम के लिए तैयार हो रहा हो। पूर्णिमा की चाँदनी में उसके खड़ग के समान उसका वेग भी चमक रहा था और एक घंटे में उसकी सेना सीमा तक पहुँच जाएगी। हमलावर धूल में मिल जाएँगे। अभी उसे वहाँ पहुंच जाना चाहिए। चले। वहाँ भागे-भागे आये और बोले :

'धोखा हो गया महाराज'

'क्या हुआ'

'सायंकाल की वेला में इतनी सेना उस ओर नहीं भेजनी चाहिये।'

'आधी भेजी गयी है।'

'उससे भी अधिक। यहाँ केवल दो सौ सैनिक बचे है, अब ?'

'सेनापति कहाँ है ? उसे फौरन बुलाइए।'

'मैंने पूछवाया। वह कहीं दिखाई नहीं दिया।'

'यह सच है ?'

'सच है महाराज।'

'तो'

'सोचने का मौका नहीं है। इस तरफ से हमला होने ही वाला है।'

इतने में तालाब के उस पार से रण कोलाहल सुनाई दिया।' जयवर्धन एक क्षण के लिए घबराया। परन्तु दूसरे ही क्षण बोला :

'तुरन्त सेनापति को बर्दी बताने का प्रबन्ध कीजिए। बाकी मैं देख लेता हूँ। घबराने की जरूरत नहीं है।'

'महाराज ?'

'अब बात करने की जरूरत नहीं। सब मालूम हो गया। आप जाइए। ठीक इन्तजाम कीजिये।'

कोलाहल और भी नजदीक सुनाई देने लगा। तालाब के बाँई ओर के मैदान में हमलावर घुस रहे थे। स्पष्ट दिखाई देने लगा। उनको उसी मैदान में रोकना था।

'चंपकमाला' जयवर्धन ने आवाज दी।

चंपकमाला आई। वह काँप रही थी। पर मुँह पर दृढ़ता थी।

'मैं चलता हूँ।'

कहकर उसने उसके हाथ को एक क्षण के लिए जोर से पकड़ा दूसरे क्षण अपनी तलवार म्यान से खींचकर धड़धड़ाता नीचे उतर गया।

नीचे आकर जयवर्धन अपने सफेद घोड़े पर बैठकर हवा के वेग से अपनी सेना की ओर चल पड़ा। वरिष्ठ मंत्री का ज्येष्ठ पुत्र सेनापति का प्रथम सहायक रास्ते में मिला बोला :

'महाराज सेनापति नहीं है। हमलावर आगे बढ़ रहे हैं।'

जयवर्धन गरज पड़ा, यदि वह नहीं है तो तुम क्या करते हो ?

'परन्तु उनकी आज्ञा के बिना...'

'मेरी आज्ञा है, तुरन्त चल पड़ो।'

'जो आज्ञा।' कहते वह घोड़े पर सवार होकर वह चल पड़ा। आगे दस बीस मिनट में दो सौ घुड़सवारों के साथ जयवर्धन आगे बढ़ गया। सेनापति का कार्य उसका सहायक निष्ठा से कर रहा था। समरोत्साह से कूच करने वाले घुड़सवारों के घोड़े उनके भाले खड्ग, ढाल चाँदी में चमकने लगे।
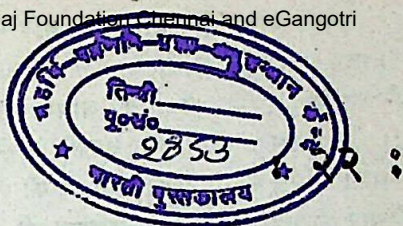
जब अपनी सेना का अगुवा बनकर जयवर्धन आगे बढ़ रहा था तब शिवेश्वर नायक भी अपनी सेना का नेतृत्व करता चला आ रहा था। तालाब की दाँई ओर विशाल मैदान में भिड़ने के लिए दोनों ओर की सेना आगे बढ़ रही थीं। जयवर्धन की अपनी सेना के साथ देखकर या युद्ध के लिए वही उपयुक्त स्थान समझकर शिवेश्वर की सेना रुकी। जयवर्धन भी रुका। विरोधी से अन्तिम बात किए बिना युद्ध शुरू कर देना न्याय नहीं सोचकर जयवर्धन ने कहलाकर भेजा कि वह बात करना चाहता है।

दूसरे क्षण ही जयवर्धन और शिवेश्वर नायक एक दूसरे के सामने खड़े हो गये। जयवर्धन ने गंभीर होकर कहा :

"देखिए, नायक, आपके बारे में मुझे कोई शिकायत नहीं है। इस तरफ से भी किसी प्रकार का उल्लंघन या अन्याय नहीं हुआ है तो भी आपका बिना किसी वजह सेना लेकर आना और हमला करना उचित नहीं है।"

'कोई अन्याय नहीं किया ? अच्छी तरह याद कर लीजिए।'

'आप ही बताइए।'

'चंपकमाला के स्वयंवर में आपने धोखा दिया। मेरा अपमान किया।'

'कौन सा धोखा ? कैसा अपमान ?'

'आप तो अब ऐसे कहेंगे ही ? उसके प्रश्न और उनके उत्तर आपको देवराय से पहले ही पता चल गये थे।'

'उनको मालूम हो तभी तो ना वे मुझसे बताते ?'

उनकी बात जाने दीजिए। बाद में उसे देख लूँगा। धोखा करके जीतकर आप चुपचाप जा सकते थे पर उस समय आप मेरी ओर मुँह करके हँसकर मेरा अपमान करने की आवश्यकता नहीं थी।'

'यदि उस समय मैं हँसा था तो अपने मन के संतोष के कारण हँसा हूँगा। आप का तिरस्कार करने की मेरी भावना नहीं थी। ऐसा मेरा विचार भी नहीं था और आवश्यकता भी नहीं थी।'

'अब सेना को देखकर मुकाबला करना है। इसलिए ऐसे कह रहे हैं। तब के उन्माद ऐसा नहीं लगा होगा। पर मैं उस अपमान को भूलने के लिए तैयार नहीं हूँ। यदि आप एक बात पूरी कर सकते हैं तो यह युद्ध रुक सकता है।'

'वह क्या बात है ?' जयवर्धन ने तिरस्कार से पूछा :

'हमें आपके राज्य की जरूरत नहीं है। आपका किला भी नहीं चाहिए। चंपकमाला को...'

'जबान काट ली जाएगी। खबरदार। यह सभ्यता की बात नहीं है।'

'मुझे सभ्यता का पाठ आपको पढ़ाने की जरूरत नहीं है। मुझे चंपक-माला चाहिए।'

'मैं चंपकमाला सौंप दूँ ? ह-ह-ह। असंभव। पागलपन है। यदि दुबारा आपने यह बात जबान से निकाली...'

'संभव नहीं ?'

'मैं अपना प्राण भी दे सकता हूँ। पर चंपकमाला को संभव नहीं ?'

'मुझे जो कहना था कह दिया।'

'अंतिम बात है ?'

'हाँ यही अंतिम बात है ?'

'तो ठीक है कहते शिवेश्वर नायक पीछे लौट गया।

'ठीक है' कहते जयवर्धन भी अपनी सेना की ओर घूम गया।

: २३ :

जयवर्धन के पास युद्ध करने लायक सेना की संख्या कितनी है यह शिवेश्वर नायक को बताने की कोई जरूरत नहीं थी। सेनापति को ही कुटिलता से अपनी ओर मिला कर उसने सब कुछ पता लगा लिया था। उसको पूर्वनियोजित ढंग से चलाना उसके बाएँ हाथ का खेल था। उसने अपनी सेना के आधे भाग को सीधा आगे जाकर किले का कब्जा करने का आदेश दे दिया था। बाकी आधी सेना उसके साथ थी।

थोड़ी देर में युद्ध शुरू हो गया। घुड़सवारों पर घुड़सवार पैदल पर पैदल वीरोत्साह से आक्रमण करने लगे। उसमें कौन मरा कौन घायल हुआ यह पता नहीं चल रहा था। लड़ाई आधी रात तक जारी थी। बरछी से बिंधे, भालों से छिदे, तलवारों से कटे सैनिक, घोड़ों के खुरों के नीचे पीस-कर चीख रहे थे। उस चीख पुकार का उस आह कराह, उसकी चीत्कार और आक्रोश का और उस मारकाट का कौन वर्णन कर सकता है। ऐसा लगता है कि शिवेश्वर नायक के सैनिक जयघोष कर रहे थे।

जयवर्धन जैसे होश ही में न था।

ऐसी स्थिति उसके लोग पीछे हट रहे थे और हार हो गयी यह समझने में देर न लगी। असहनीय आक्रोश से उसने अपना घोड़ा शिवेश्वर नायक की ओर बढ़ाया। वह विजय के उन्माद में था। जयवर्धन को देखकर उसने अट्टाहास करते हुए 'बस हो गया 'बस हो गया ?' कहा।

'अभी होना तो बाकी है।' कहकर जयवर्धन उस पर लपका। घोड़े

की पीठ पर ही उन्होंने भाले और बरछों से युद्ध किया। उन्होंने घोड़ों से उतर कर चमकती हुई तलवारें निकालकर एक दूसरे पर वार किया। दाव पेचों में दोनों में कोई भी किसी से कम न था। अन्त में एक वार से शिवेश्वर की तलवार टूट गयी। उसी क्षण जयवर्धन चाहता तो उसके टुकड़े कर सकता था पर उसने सोचा कि यह न्याय नहीं। बीच में घुसकर आये दो व्यक्तियों को उसने धराशायी कर दिया। अन्त में अपनी तलवार फेंक कर फिर से शिवेश्वर पर टूट पड़ा।

पर जयवर्धन का अंदाजा ठीक नहीं बैठा। उसका न्याय अन्याय का विचार उसे ले डूबा। शिवेश्वर शक्तिशाली व्यक्ति था। लपक कर तलवार चलाने में जयवर्धन के सम्मुख वह ठहर नहीं पाया था। परन्तु मल्ल युद्ध में उसका मुकाबला जयवर्धन के लिए भारी पड़ा। दो बार बड़े प्रयास से उससे बचा; पर तीसरी बार पूरी तरह प्रतिद्वन्दी की पकड़ में आ गया। शिवेश्वर ने जयवर्धन को तीन चार बार धरती पर पटक दिया और छाती पर चढ़कर गर्दन दबा दी। जयवर्धन दो बार चीखा और छटपटाया तीसरी बार न वह चीखाऔर न छटपटाया। अपने विजयोन्नमादमें शिवेश्वर नायक घोड़े पर चढ़कर किले की ओर चल दिया।

: २४ :

इधर जब मैदान में युद्ध चल रहा था उधर किले पर भी धावा जारी था। मुख्य फाटक बड़ा मजबूत था। उस पर कुदालों से प्रहार किये जा रहे थे। खाई के पार से कुछ लोग रस्सियों के सहारे किले के दीवारों पर चढ़ने के प्रयास में थे। भीतर वालों ने जो भी हाथ आया उसी से बाहर वालों के यत्नों को विफल करने का प्रयास किया। परन्तु

आधी रात बीतने तक सबको अनुभव हो गया कि शत्रु को रोक पाना कठिन है।

वरिष्ठ मन्त्री ने महल पर चढ़कर एक बार मैदान का निरीक्षण किया नीचे मैदान में युद्ध खतम हो चुका था। शिवेश्वर नायक को घोड़ा कुदाते हुए आता देखकर मन्त्री समझ गया कि सब समाप्त हो गया। अब किले में रनिवास की मान रक्षा ही उनका कर्तव्य बाकी था। वह हारे हुए कदमों से चांपकमाला के पास गया।

चांपकमाला मूर्ति के समान खड़ी थी। मन्त्री के मुँह से बात ही नहीं निकल रही थी। अन्त में चांपकमाला ने ही पूछा।

'क्या बात हैं मन्त्री जी ?'

'हमारा दुर्भाग्य है देवी।' मन्त्री ने रूंधे कंठ से कहा।

'महाराज कहाँ है ?'

'मन्त्री ने सिर झुका लिया।'

'हाय। मेरे महाराज...कहकर वह चीख पड़ी।

केवल एक ही बार। बाद में उसने सीधी दृष्टि से झरोखों को देखा। एक कदम नहीं हिली। एक शब्द नहीं कहा। दृष्टि स्थिर हो गयी।

'अब यहाँ आपका रुकना ठीक नहीं, देवी ! जान के लिए न सही पर मान के लिए यहाँ से निकल चलना ही ठीक है। गुप्त द्वार से निकल जाइए, देवि। अब यहाँ ठहरना ठीक नहीं।

'सब समाप्त हो गया ?'

'सब समाप्त हो गया। उस चांडाल ने धोखा दिया।'

'दूसरों को पहले निकालिए।'

'पर आप ?'

'मैं भी आती हूँ। मेरी चिन्ता छोड़िए; बच्चे और बूढ़ों को पहले निकाल दीजिए।

'आपको भी तुरन्त निकल जाना चाहिए, देवि'

'आप मेरी चिन्ता न कीजिए। दूसरों की ओर ध्यान दीजिए।'

मन्त्री को वहाँ से गये पाँच ही मिनट बीते होंगे कि चंपकमाला जहाँ खड़ी थी वहाँ से एक इंच भी न हिली। विकृत होती हुई चाँदनी से उसकी निगाह न हटी। दुख का एक निश्वास भी न छोड़ा। वह निश्चय खड़ी थी। निर्विकार खड़ी की। कमरे में किसी के आने की आहट हुई। वह उस आहट से जागी। उसने पूछा :

'कौन है ?'

'मैं हूँ।' कहकर सेनापति ने आकर झुककर नमस्कार किया।

'आइए सेनापति जी क्या समाचार है ?'

'वही बताने आया हूँ।'

'कहिए ?'

'कहने को कुछ नहीं है हमारा दुर्भाग्य।'

'महाराज ?'

'क्या बताऊँ, देवी ?' कहकर उसने दुख का अभिनय किया।

'तो अब मुझे क्या करना होगा सेनापति जी ?'

'कुछ भी नहीं किया जा सकता, देवी। किले का फाटक अब टूटने को ही है।'

'तो एक काम कर देंगे ?'

'क्या काम, ऐसे क्यों कह रही हैं ? आज्ञा दीजिए।'

'अब तो आगे से ऐसे ही कहना होगा। अब हम हारे हुए हैं न ? यदि आप यह काम कर दें तो आगे के सारे संकटों से बच सकते हैं।'

'बताइए तो, देवी।'

'हार की खबर मुझे पहले ही पहुंच गयी थी, मैंने एक निर्णय किया है। आप जरा नायक को सूचित कर दें किले का फाटक तोड़ने की जरूरत नहीं। आधी घंटा यदि ठहर जायं तो मैं स्वयं आकर उनके अधीन हो जाउँगी।'

'क्या यह सच है ?'

'अब और क्या किया जा सकता है ? आप जबानी कहें तो वे शायद विश्वास न करें मैंने यह बात एक कागज पर लिखकर रखी है। वही पहुंचा दीजिए। यदि आप उन्हें मनवा सकें तो बड़ा उपकार होगा।'

'अवश्य करूंगा देवी। इसमें उपकार की क्या बात है। आपका पत्र देखने पर भी क्या वे मानेंगे ?'

'अच्छा कह कर भीतर के कमरे में गयी। एक दो क्षणों में वापस आयी। उसने अपने दोनों हाथ बांध कर आगे किये थे। उसके हाथ रूमाल से ढंके थे।

'मैं इस पत्र को फिर से नहीं देख सकती थी। इसी कारण इसे रूमाल से ढक रखा है। लीजिए और उन्हें पहुंचा दीजिए। कहती हुई दरवाजे तक चली गयी। सेनापति के हाथ, 'यह कैसा धोखा' कहने से पूर्व ही उसने रूमाल में छिपाई हुई कटार की उसकी छाती में सीधा भोंक दिया। अनपेक्षित एक ही बार में सेनापति धरती पर लुढ़क गया।

'नीच ! मेरे महाराज को धोखा दिया ?'कहते हुए उसने एक बार और कटार भोंक दी। सेनापति वहीं ढेर हो गया।

इसके बाद उसी आवेश में जब वह दो तीन कमरे पार चुकी तो उसकी विश्वस्त दो दासियाँ आकर गिड़गिड़ाकर बोली,

'अब आपका यहाँ रहना ठीक नहीं। तुरन्त निकल चलिए। किले का फाटक टूट गया है।'

'तुम लोग पहले यहाँ से जाओ।'

जब चंपकमाला यह कह रही थी तब उसे सैनिक के भीतर घुसने का शब्द सुनाई दिया। अब वहाँ करने को बाकी कुछ नहीं बचा था। केवल उन्हीं के लिए बनाये गये गुप्त द्वार में घुसी और द्वार बन्द कर दिया। अब उसने सोचा होगा अब कोई आकर क्या कर सकता है ? पर चंपकमाला कुछ भी सोच पाने की स्थिति में नहीं थी। वह संकट के समय भाग निकलने के लिए बनाया गया किले का गुप्त रास्ता न था रात को चोरी-चोरी

मयूर नौका तक पहुँचने के लिए बनवाया गया। एक अलग गुप्त द्वार था जो इस समय काम आया। किले के दूसरे रास्ते में जंगल तक पहुँच चुके थे। वे वहाँ चंपकमाला की प्रतीक्षा कर रहे थे पर उसके बहुत देर तक पहुंचने पर उन्होंने सोचा 'वह शायद शत्रु के हाथ पड़ गयी।' और वे जंगल में छिप गये।

चंपकमाला जिस गुप्त मार्ग पर जा रही थी वह उससे परिचित थी। वह सदा जयवर्धन के पास जाया करती थी। पर आज अकेली थी। वह भी नौकाविहार को नहीं, कैसा दुर्भाग्य! वह गुप्त मार्ग तालाब के किनारे बने राजमहल में निकलता था। वहाँ घनों चंपा के पेड़ लगाये गये थे। यहाँ एक गुप्त द्वार है इसकी कल्पना भी किसी को भी नहीं हो सकती थी।

जब उसी मार्ग से चंपकमाला पहुँची तो रात का तीसरा पहर समाप्त होने को था। चटकती हुई चंपा की कलियाँ सौरभ लुटा रही थी। पौष का चाँद पश्चिम दिशा में चमक रहा था। वहाँ जो कुछ घट रहा था उसे निर्विकार भाव से देखे जा रहा था।

चंपकमाला का मन पता नहीं कहीं भटक रहा था। अनजाने में ही चंपा के पेड़ों को हाथ तक आने वाली डालियों से फूल तोड़ती हुई और उन्हें अपने आँचल में भरती चली जा रही थी। पल्लू भर फूल लेकर तालाब के किनारे जा पहुंची सदा की भाँति मयूरनौका पानी पर तैर रही थी। प्रातः का समीर चलने लगा था।

उसने मयूरनौका को टकटकी बाँध कर देखा। हजारों मीठी यादों की प्रतीक थी वह मयूरनौका। उसे उसने बार-बार देखा। उसकी दृष्टि पानी के पार टिकी थी। उसका मन जीवन के पार चला गया था। जीवन को त्याग कर गये पति के अंतरंग में जा मिला था।

बिना कुछ सोचे समझे वह एक-एक करके घाट की सीढ़ियों पर उतरी। धीरे से मयूरनौका में पाँव धरकर उसकी बँधी रस्सी खोल दी।

हवा की धीमे थपेड़ों के साथ मयूरनौका चल पड़ी।

'कहा ?'

कहाँ जा रही हो ? यह पूछने वाला वहाँ कोई न था। नौका जब बीच पानी में पहुँची तो आठ दस सवार किनारे पर चीखते चिल्लाते हुए आ पहुंचे। वे चिल्ला रहे थें 'उस नाव को रोको उसमें कोई भाग रहा है।'

पर उस नौका को कोई रोक नहीं पाया। देखते-देखते वह नौका पानी में उतरने लगी।

नौका के पेंदें का ढक्कन चंपकमाला ने निकाल दिया था।

देखते ही देखते नौका आँखों से ओझल हो गयी। उसका मस्तूल तक अदृश्य हो गया।

एक आधे मिनट में चंपकमाला के पल्लू में भरे फूल ऊपर तैरने लगे। सब फूल ऊपर आ गये।

फीकी पड़ती हुई चांदनी उन फूलों पर पड़ रही थी।

: २५ :

उसी समय मैदान में गिरा बेहोश जयवर्धन धीरे से कराहा। उसे अभी इतना होश नहीं था कि वह कहाँ पड़ा है और उसने कहाँ युद्ध किया था। उसे थोड़ा बहुत होश आने पर चारों ओर की श्मशान शांति को बोध हुआ। उसमें न हिलने की शक्ति थी और उठने की। सिवाये कराहने के कुछ भी कर पाने योग्य न था। अन्त में कोहनियों के बल मुंह उठाने का प्रयास किया पर सफल न हुआ। धप् से गिरा। फिर से प्रयत्न किया। चारों ओर सूनी-सूनी सी चाँदनी फैली थी। उस मन्द प्रकाश में चारों ओर

गिरें सिपाही और घोड़े दिखाई दिये। 'उसने 'हाय' कहा । बहुत प्रयास करने पर भी उठकर बैठ न सका।

पास ही कहीं घोड़े की टाप सुनाई दी। वह पुनः 'हाय' कह कर कराहा। वह आर्त स्वर सवार के कान तक पहुँचा होगा। ऐसा लगा मानो वह वहाँ गिरे हुए लोगों में किसी को खोज रहा था। जयवर्धन फिर से जोर से कराहा।

'घोड़े को दूर खड़ा करके वह व्यक्ति पास आया। नजदीक आने पर वह कराहते व्यक्ति कों पहचान गया। वह दौड़ कर आया और 'हाय मेरे महाराज' कहता उसके पास बैठ गया। आने वाला व्यक्ति जयवर्धन के सेवकों में से एक था।

सब समाप्त हो गया समझकर किले के गुप्त मार्ग से निकल जाने वाले व्यक्तियों में वह भी एक था। वह अपनी जान बचाने के लिए नहीं भागा था बल्कि वह यह जानने आया कि उसके मालिक का क्या हुआ। यदि वह जीवित हो जो-जो भी सहायता बन सके करें। और मगर मर चुका हो तो उसका शरीर जंगली भेड़ियों के मुंह में पड़ने से बचाये। इसी स्वामी भक्ति से वह जो घोड़ा हाथ लगा उस पर बैठ तालाब के इधर-उधर खोज रहा था।

तालाब के पास आते समय उसने देखा था कि चंपकमाला नौका पर बैठकर चली गयी थी और नौका पानी में डूबने लगी थी। यह देखकर वह अत्यन्त दुखी होकर अपने स्वामी को ढूंढ रहा था। तब कराहते जयवर्धन ने पूछा।

'तुम कौन हो भाई ?'

'वह आँसू बहाते हुए बोला, 'आपका दुर्भाग्यशाली सेवक हूँ महाराज।'

'उन्होंने सब नष्ट कर दिया था ? हाय—?'

'महाराज यहाँ ठीक नहीं। घोड़ा है। आप जहाँ कहें वहाँ ले चलूं।

'कहाँ चले ? बाकी कहाँ ? कोई बचा भी है ?'

'मंत्री गुप्त मार्ग से किले के लोगों को बाहर ले गये।'

चंपकमाला ?'

'हाय। मैं कैसे बताऊं मालिक।' कहते किसी प्रकार उसने अपने असहनीय दुख को रोका। उसनें चंपकमाला का नौका पर बैठकर दूर तक जाना वहाँ उसका डूबना और फूलों का लहरों में तैरकर तालाब के किनारे लगना सब बताया। इसे सुनकर जयवर्धन अपने दुख को न रोक सका। उसने पूछा—

'अब हमें कुछ नहीं चाहिए। मुझे उस तालाब के किनारे तक पहुँचा दो। अपने घोड़े पर मुझे बिठा दो। मैं किसी प्रकार वहाँ जाना चाहता हूँ। वहाँ तैरते फूलों में से एक फूल भी मिल जाय तो बस, उसे सूंघकर मैं अपने प्राण खुशी से छोड़ दूँगा। इतना करोगे ?'

'बिना एक शब्द भी कहे सेवक ने घोड़ा लाकर खड़ा किया। बड़ी मुश्किल से जयवर्धन को घोड़े पर बिठाया। वह अपने को संभाल नहीं पा रहा था। फिर भी ऐसी स्थिति में भी उसने केवल मानसिक बल से ही घोड़े को भगाया। घोडा वायुवेग से दौड़ा। तालाब पर पहुंचते-पहुंचते ऐसा लगा उसके चारों ओर की दुनिया घूम रही है। उसने एक बार पानी की ओर देखा। चंपकमाला कहकर पुकारा। उसका दिल फटा जा रहा था। वह जमीन पर लुढ़क पड़ा। तालाब के किनारे जहाँ जयवर्धन का शरीर गिरा था। प्रातः की हवा के थपेड़ों से वहाँ लहरों पर तैरते हुए चंपा के फूल उसके पाँव छूने लगे।

: २६ :

गीत समाप्त होने को था। उसके भावोद्वेग को अरविंद सहन नहीं कर सका। गाने वालों के कंठ भी भर आये थे। अन्त में चंपा के फूल लहरों पर तैरकर उसके पाँव के पास चक्कर काट रहे थे। यह बात सुनते-सुनते अरविंद के आँखों से आँसू टपक पड़े। उसने किसी प्रकार अपने को रोका। अन्य श्रोतागण भी मूक थे। गीत नहीं रुका। परन्तु उसकी गति एकदम बदल गई। समर का आवेश, मृत्य की पीडा, आत्म समर्पण के बाद गीत एक शांति और गंभीरता को व्यक्त करने लगे थे। बार-बार मन को झकझोरने वाली एक अनोखी स्थिति में अरविंद वह गीत सुनता जा रहा था।

गीत समाप्त होने को था—

उस दिन से आज तक उस तालाब पर एक विचित्र बात होती है। आधी रात में जब सप्तर्षिमंडल आकाश के मध्य में आ पहुंचता है उस तालाब के पानी को और चारों ओर के पेड़ पौधों को एक गहरा मौन ग्रस लेता है। अंधेरा हो या चाँदनी एक अनिर्वनीय माया उस भू-प्रदेश को घेर लेती है। ऐसे गहरे स्तब्ध वातावरण में हजार वर्ष पूर्व की वह सुकुमारी चंपकमाला अपनी मयूरनौका में पानी के भीतर से बाहर आती है। हलके-हलके कदमों से खंडहर हो गयी सीढ़ियों से चढ़कर झाड़ियों को हटाकर आगे की ओर चलती है। वह चाहे कितने भी हलके कदम क्यों न रखे। उसके पाँवों की आहट चारों ओर के कीड़े-मकाड़ों की झंकार में श्रुतिबद्ध रूप से लय हो जाती है। उसकी उस दिन लगायी गई भौंहों के

ऊपर की चांदन की बिंदियाँ भौंहों के मध्य में लगाया सुन्दर तिलक माँग के बीच लगा सिंदूर आज भी अपने नित्य नूतन रूप में आँखों को आकर्षित करता है। पाँव में लगाये आलते का रंग आज भी वैसा चमकदार है। उस दिन पहनी जरी की चोली और आकाश के रंग की साड़ी आज भी भींगकर चिपकी हुई दीखती है। उससे पानी की बूंदें जहाँ-जहाँ धरती पर टपकती है वहाँ-वहाँ धरती उपजाऊ होती है। हल्के पाँवों से चलकर वह चांपा के पेड़ से टेक लगा कर खड़ी हो जाती है। और उत्तर के मैदान की ओर की ओर टकटकी बाँधकर देखा करती है। चाँदनी के ढलने तक सप्तऋषि मंडल के आकाश के एक ओर सरकने तक वह वैसे ही खड़ी रहती है।

मूसलाधार वर्षा के दिनों में जब नदी-नाले भर जाते हैं। किलों की वे खाइयाँ जब भरकर उमड़ कर मैदान को भरने लगती हैं तब कभी-कभी चांपकमाला उस मैदान में आ जाती है। आज भी उसके छोटे-छोटे पाँव के निशान कभी तक खेतों में मेड़ों पर और वह प्रातः कालीन चमकदार ओस की भरी हरी-हरी घास पर दिखाई देते हैं। वह कदमों के निशान पूर्व में प्रकाश फैलते ही सूर्य की प्रथम किरणों के स्पर्श करने से पूर्व ही आँखों से ओझल हो जाते हैं।

गीत समाप्त हो गया। गाने वाले फिर से पहले चरण के ही बोल दोहराने लगे।

सुनो रे सुनो एक कहानी
मयूरनौका की कहानी
चांपकमाला की व्यथा को
चांपकमाला की कथा को

गीत की ध्वनि और एकतारे की झंकार चारों ओर की शांति में स्वप्न घुलने के समान घुलने लगे। परन्तु अरविंद का अंतरंग उसकी एक-एक बात, एक-एक चित्र उसको याद कर रहा था। उसके मन की ऐसी

स्थिति हो गई कि यह समझ नहीं आ रहा था कि क्या करना चाहिए या क्या नहीं कहना चाहिए। उस स्थिति से स्वाभाविक स्थिति में आने को उसे पाँच मिनट लगे।

: २७ :

आँधी रात समाप्त हो चुकी थी। लोग छितरने लगे। वेंकटरामय्या के पास आने पर अरविंद बोला।

'अद्भुत था वेंकटरामय्या जी। गीत वास्तव में अद्भुत था। एक अद्भुत हुआ। मैं तो इसे कभी भूल नहीं सकता।'

'सबको ऐसा ही लगा। इसने भी अच्छा गाया पर इसके पिता परशु से सुनना था। वह तो उस मायालोक ही यहाँ उतार कर रख देता। उसकी ध्वनि भी वैसी थी।'

'यह भी कोई कम नहीं। इसके लिए मुझे पटवारी जी को विशेष रूप से थैंक्स देना है। पर वेंकटरामय्या एक काम कीजिए। इन दोनों को मेरी तरफ से पच्चीस रुपये दे दीजिए। उन्होंने जो गाया उसके मुकाबले में यह कुछ नहीं। फिर भी हम अपनी खुशी व्यक्त करना चाहते हैं।'

वेंकटरामय्या ने उन दोनों गवैयों को बुलाया। अरविंद उनसे कहा, 'गीत बहुत बढ़िया था। बड़ी खुशी हुई। हम इसे कभी भूल नहीं सकते।'

दोनों गवैये नमस्कार करके खड़े हो गये। वेंकटरामय्या ने पच्चीस रुपये अरविंद के हाथ में पकड़ाए। जब वह उनको देने लगा उन दोनों ने लेने से इंकार किया। 'तब मैं अपनी खुशी से दे रहा हूँ। आपको लेना ही पड़ेगा।' कहते हुए उसने उसके हाथ में रुपये थमा दिये। वे भी दुबारा

नमस्कार करके पीछे हट गये। पास ही खड़े गोपालय्या को देखकर, पट-वारी जो थैंक्स बाद में करेंगे। अभी नहीं।' कहकर मुस्कराया। इतने से ही गोपालय्या की खुशी का कोई ठिकाना न रहा।

अरविंद का सारा मन उसी गीत में सराबोर हो गया था। :वह उसी के बारे में सोच भी रहा था। फिर भी दूसरे दिन के काम की ओर से उसका ध्यान नहीं हटा। उसने कहा :

इस झगड़े का काम तो आधे में ही रह गया। कल यहाँ रहकर मुझे क्या करना है। वेंकटरामय्या कल सुबह क्यों न चल दें।'

'ऐसा कहने पर भी उसका मन अत्यन्त बेचैन था। वेंकटरामय्या बोले, 'और एक बार उस तालाब तक जाकर उसे देखकर आना नहीं चाहिए।' कल सुबह क्यों न चले ?'

चंपकमाला की कहानी उसके मन पर इतना प्रभाव डाल चुकी थी कि वेंकटरामय्या की सलाह को मानकर वह बोला, 'तो ठीक है। उस जगह के झगड़े के बारे में शंकर नायक ने गवाह पेश करने के लिए कहा था। उसे गवाहों को दस बजे लाने को कहा था।' यह कहकर वह सोने चला गया।

अरविंद को नींद नहीं आई। उसने घड़ी देखी। रात के दो बज चुके थे। फिर से विस्तर पर लेट गया। बहुत प्रयास करने पर भी नींद नहीं आ रही थी। वही गीत उसके कानों में गूंज रहे थे। उसके भाव उसके हृदय पर बार-बार अपना प्रभाव डाल रहे थे। एक बार चंपकमाला का चित्र आँखों के सामने आता तो दूसरी बार शारदा का चित्र उभर आता था। उसका मन इतना दुखी हो रहा था कि एक की मृत्यु का दर्द दूसरी की मृत्यु से अलग नहीं लग रहा था। हवा के झोंके से कभी-कभी डेरे की खिड़की के परदे फड़फड़ा उठते थे। एक क्षण के लिए बाहर की चाँदनी दिखाई दे जाती। दूसरे क्षण ही अंधेरा हो जाता था। उस प्रकाश और अंधेरे के बीच अरविंद का मन झूल रहा था। दुख से थक गया था। चंपकमाला की मृत्यु के दुख से उसका दिल फटा जा रहा था। शारदा की मृत्यु को याद करके

फिर से दुखी हो रहा था। उस समय उसे लगा कि दोनों की मृत्यु अलग-अलग हुई। ज्यों-ज्यों सोचता सब विचित्र लगने लगा। परन्तु किसी बात को सोचने का अवकाश न देते हुए शारदा की मृत्यु का चित्र उसकी आँखों के सामने बार-बार आने लगा।

: २८ :

वह शिवमोग्गा में रहता था। बदली होने पर वहाँ गये उसे तीन साल होने को थे। जितने साल वह वहाँ रहा, चाहे कोई भी मौसम क्यों न हो, जब ऊब होती तब कार से गाजन्दूर 'तुंगा जलाशय' जाकर सुख से सायंकाल बिताकर लौटना प्रतिदिन का कार्यक्रम सा हो गया था। उस जलाशय को उसके पीछे दूर-दूर तक फैले जंगल को जलाशय से गिरने वाली धारा को, बाद में शांति से बहने वाले उस प्रवाह को देखने से शारदा का मन कभी नहीं भरता था। जब कोई काम न होता था वह सदा उस जलाशय तक जाने को कहती। गरमी में जब पानी बढ़ना कम हो जाता था तब अरविंद कहता 'वहाँ पानी नहीं है ? जलाशय सूख गया है, वहाँ देखने को क्या रखा है।' तब वह, वह जगह ही इतनी सुन्दर है, पानी ज्यादा न हो तो क्या हुआ ? संन्ध्या की हवा की तो कोई कमी नहीं है।' कहकर उसे जबर्दस्ती ले जाती थी। वहाँ उन्होंने वहाँ अनेक चाँदनी रातें गुजारी थी।

तब जनवरी महीना था। एक सायंकाल को शारदा ने वहाँ चलने को कहा। चाँदनी भी होने वाली थी। जरा आराम से बैठने की खातिर जल्दी ही गये थें। चलने से पहले ही शारदा ने कहा था, 'आप चाहे जो कहिए, आज नौका में उस पार तक चक्कर लगायेंगे।' अरविंद ने 'ठीक है, उसमें

कौन सी बड़ी बात है' कहा था। सायंकाल की उतरती धूप में नौका में बैठकर प्रवाह के विपरीत दिशा में जाकर उस पार पहुंचे। वहां का जंगल सुनसान था। इस तरफ के जैसा वहां बैठकर जल प्रपात देखने के लिए कोई स्थान नहीं बनाया गया था। लौटने के लिए नौका पर बैठने को तैयार शारदा जंगल की ओर देखकर-'उधर देखिए, वह मोर कितना सुन्दर है, और भी कई हैं।' कहते-कहते वह नाच ही उठी। अरविंद को लगा कि उस जंगल में देर तक ठहरना ठीक नहीं है परन्तु शारदा तुरन्त चलने के लिए भी तैयार नहीं थी। मोरों के आंखों से ओझल होने के बाद भी वह उसी ओर देख रही थी। 'अब चलें' वे मोर फिर से आऐगें क्या ? हम और जितनी देर तक यहां रहेंगे तब तक वे इस तरफ नहीं आएंगे। कहकर अरविंद को उसे जबर्दस्ती नौका में बिठाना पड़ा। उनको फिर से इस पार पहुंचने में बीस मिनट लगे। परन्तु शारदा का सारा ध्यान उसी पार था। उसकी आंखों मोर को देखने के लिए बेचैन थी।

प्रकाश घटने लगा था। पूर्व दिशा में पूर्णिमा का चांद दिखने लगा था। संध्या के सुनहरे प्रकाश के साथ चाँदनी का रुपहला प्रकाश मिलकर एक विचित्र भूरे रंग में बदल गया था। शारदा को फिर से नाव पर चढ़ने की इच्छा हुई।

उसने कहा था, 'और एक बार वहां तक चक्कर काट आये ?

वह हँसकर बोला था, 'तुम्हारा यह कैसा पागलपन है। एक बार चक्कर लगा कर नहीं आये ? तुम्हारे लिए फिर से वे मोंर वहां आएंगे ?

'देखने के लिए भले कुछ न हो। उस तरफ जाने में ही एक प्रकार का आनन्द मिलता है। ऐसे समय में नाव पार रहना ही आनन्ददायक है न ?'

'मुझे तो ठीक नहीं लगता।' अरविंद ने कहा।

'अच्छा तो मैं अकेली चक्कर लगाकर आऊंगी। आप यहां बैठिए। कितनी देर लगेगी, ज्यादा से ज्यादा बीस मिनट।'

'तुम घबराओगी तो नहीं ?

'इसमें घबराने की क्या बात है ? जाना और वापस आना । उस पार मैं उतरुंगी ही नहीं । 'मल्लाह होशियार है ।'

'शाम के धुँधले प्रकाश में और धीमे-धीमे उभरती चाँदनी में शारदा नाव पर चढ़ी । बहते पानी पर तैरती नाव देखने में बड़ी प्यारी लग रही थी । नाव के उस पार पहुँचने तक पूर्व दिशा का प्रकाश समाप्त हो गया था चाँदनी पानी पर नाच रही थी ।

अरविंद के हाथ हिला कर बुलाने को दूर होने के कारण उसे दिखाई देना संभव न था । पर पता नहीं क्यों इसको उसे बुलाने की इच्छा हुई । बुलाया । नौका लौटने लगी । उन्होंने देर हो गयी समझा होगा । मल्लाह ने प्रवाह के ऊपर की तरफ जाकर घूमकर आने में देर होगी, सोचकर नाव सीधी ही मोड़ी होगी । नाव तेजी से चली आ रही थी । प्रवाह के बीच में पहुँचने पर ऐसा लगा जैसे नाव जोर से लड़खड़ाई । दुबारा देखते ही नाव दिखाई ही नहीं दी । पानी कम होने के कारण खिचाव नहीं रहा होगा पर वहाँ कुछ घट गया था । झुटपटे के कारण साफ दिख नहीं रहा था । शारदा झटके से उठी थी । इस कारण नाव एक ओर झुक गयी थी । मल्लाह उसे सँभालने का प्रयास कर रहा था पर कर नहीं पाया । और देखते ही देखते नाव उलट गयी । शारदा का पानी में गिरना अरविंद ने देखा । उसके मुख से चीख निकली, आंखें बन्द कर ली । दुबारा आंखें खोलने पर शारदा वहाँ न थी ।

अरविंद बिस्तर में से झटके से उठ बैठा । वह कहाँ है ? और वह क्या देख रहा है ? उसका मन इस स्थिति में पहुँच चुका कि वर्षों पहले घटी घटना मानों आज ही उसके सम्मुख घट रही थी । हवा के थपेड़े से फिर खिड़की की आवाज हुयी । अब उसे ऐसा लगा कि नींद नहीं आएगी । उठ कर बाहर आया । चन्द्रमा ढलने लगा था । चाँदनी फीकी पड़ती जा रही थी । उस प्रकाश को आस-पास के पेड़ पौधों को और उधर को फैले जंगल को देखते ही मन फिर से चंपकमाला की ओर बह गया । ऐसी ही रातों में

ही तो चंपकमाला अपनी नौका से बाहर आकर घने पेड़ से टेक लगा कर अपने प्रियतम की राह देखती है। क्या अब भी वहाँ होगी ? उसने सोचा कि यह कहानी है परन्तु चारों ओर की नीखता को याद करते ही उसे लगा कि ऐसे में कुछ भी असंभव नहीं। सुवह की सर्दी चुभ रही थी पर अरविंद का उस ओर ध्यान ही न था। उसने सोचा चंपकमाला अवश्य ही इस निसर्ग के बीच कहीं है। चंपकमाला की याद करते-करते उसकी आंखों के सामने शारदा के अनेक चित्र घूमने लगे। जब तक उसके साथ रही तब की जीवन के अनेक सुखद प्रसंग, उसका शारीरिक सौष्ठव चेहरे का रंग, उसकी हँसी, एक आध बात नहीं सैकड़ों की संख्या में जब उसके सामने से गुजरी तो उसने सोचा क्या शारदा भी यहाँ हो सकती ? या कहाँ और हो सकती है जब चंम्पकमाला यहाँ हो सकती तो शारदा क्यों नहीं ? वह कहाँ जरुर है। इस भ्रम ने उसे घेर लिया। इस जगत ने चंपकमाला जैसी सुन्दरी रानी प्रेम की पुतली को न खोकर जब अपने आंचल में छिपा रखा है, तो उसी की भाँति उसी जैसी शारदा की हँसी को, उसके मुख के सहज सौन्दर्य को, उसके हावभाव के आकर्षक को, कभी खोया नहीं होगा। उसे लगा उसने उसे कहीं छिपा कर अवश्य रखा होगा। उसके हृदय की एक-एक धड़कन, आस-पास को निस्तब्धता में प्रतिध्वनित होती सी भासित होने लगी।

उसे लगा कि जंगल के उस गहन मौन में और उस शांत समय में वह कहाँ दीख सकती है। क्यों न इधर-उधर दूर तक जाकर देखे। अरविंद के विचार दूर-दूर तक भटकने लगे। अकेली चांपकमाला क्यों ? अकेली शारदा ही क्यों ? इस जगत के आदि से आज तक जो लोग पैदा हुए, बढ़ें, हंसे, खेले, रो धोकर कालातीत हुए। उन सबका हंसना, रोना, तब से लेकर आज तक खिली कलियों का सौंदर्य फूल बनकर लोक को लुभावने वाला सभी सौंदर्य और धीरे दबे पाँव आकर नृत्य करके प्रकाश में लीन हो जाने वाला वन-सौंदर्य, यह सब दूसरे किसी लोक में आँखों के परदे से परे हमारें

पास होने पर भी दूर, अति दूर छिपे होंगे। इस प्रकृति में कहा एक दिव्य जीवन है। कवियों का यह कथन स्वप्नमात्र नहीं। नहीं तो जो लोग हम से बिछड़ चुके हैं कभी-कभी स्वप्न में कैसे पास आते हैं। ठंडी हवा के झोंके से वह फिर से अपने आप में लौट आया। फिर से आकर बिस्तर पर लेट गया। उसे एक अव्यक्त सांत्वना सी मिली। उसे लगा शारदा कहीं उसके पास ही है। उसी विचार की गोद में उसका मन नींद में खो गया।

: २६ :

आदत के अनुसार कुछ देर से ही उठकर अरविंद ने स्नान और फलाहार आदि करके केस से संबंधित कागजात देखे। वेंकटरामय्या सहायता के लिए पास बैठे ही थे। दस बजे तक शंकरनायक ने अपनी तरफ से गवाह देने के लिए चार-पाँच लोगों को लेकर आने तक अरविंद कागजातों को देख ही रहा था। फैसला सुनना कठिन नहीं था। परन्तु यह सोचकर कि पुराने दाखलों की पूरी तरह से बिना जाँच किए और गवाहों की बात न सुने बिना किसी निर्णय पर आना नहीं चाहिए, वह उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। सुनवाई लगभग साढ़े दस बजे शुरू हुई और साढे बारह तक चली। बाद में डेढ़ से साढ़े चार तक चली। तब जाकर काम समाप्त हुआ। उसे इस बात की तसल्ली हुई कि जो काम करना था वह सही ढंग से पूरा हो गया।

सारा दिन काम में जुटे रहने पर भी मन के एक कोने में गत रात की सुनी कथा के अनेक अंश, उसके बाद नींद न आने के कारण मन में अनेक

विचार झांक रहे थे। सुनवाई समाप्त होने के बाद तालाब के किनारे जाना चाहिए जो कहानी सुनी थी उसकी पृष्ठभूमि से वहाँ के अवशेषों का निरीक्षण करना चाहिए। वह विचार उसके मन में बार-बार उठ रहे थे। इसलिए दोपहर को काफी पीने के बाद घोड़े पर चढ़कर वेंकटरामय्या को बतलाया कि वह जरा घूम आएगा।

'उन्होंने पूछा, 'किस तरफ जा रहे हैं ?'

'खास निश्चय नहीं है। सारा दिन बैठे ऊब गया हूँ। ऐसे ही जरा घूम आता हूँ। आस-पास की जगह भी देख लूँगा।

'बहुत दूर न जाइएगा।'

'अंधेरा होने तक लौट आऊंगा।'

'तालाब की ओर जायेंगे क्या ?

'सोच रहा हूँ'

'उस तरफ क्यों जाते हैं ?'

उनका डर सबकी समझ में आ गया। वह तालाब की ओर जाना चाहता था। उनके विचार जानने से ही वह 'सोच रहा हैं' कहकर घोड़े पर सवार होकर चला गया। वेंकटरामय्या गोपालय्या के घर की ओर गये।

एक दिन पहले ही तो गया था। अंतः सही रास्ता पकड़कर जाने में अरविंद को कोई कठिनाई नहीं हुई। उतरती धूप छनकर आ रही थी। दस मिनट सवारी करने के बाद जंगल के किनारे तक पहुँच गया। दो लंबे पीपल के वृक्ष थे। वहाँ घोड़े से उतर पड़ा और उसे बांधा। उन दोनों के बीच से जाते हुए उसने सोचा उस स्वप्न महल का प्रवेश द्वारा वही होगा। सुनहरी धूप चित्र-विचित्र होकर पत्तों के साथ अठखेलियां कर रही थीं। चारों ओर की गंभीरता थी। उसने सोचा कैसा जंगल है यदि कोई इस जंगल के रहस्य को भेद सकता है तो मृत्यु के परे के जीवन को भी भेद सकता है। कल का विचार फिर आया कि जो पहले गये वे सब यहीं है।

आगे उसने सोचा कि उस अदृश्य दुनिया के निवासी एक क्षण के लिए जीवन और मृत्यु के बीच को परदे को उठाकर नहीं देखेंगे ? यदि देखें तो? सूखे पत्ते पर पांव रखने से उससे निकलने वाले शब्द दर्दसे भरे से लगे। जंगल को लांघकर जब वह तालाब के किनारे पहुँचा तब सूर्य पहाड़ों के उस तरफ छिप गया था। खंडहर हुई सीढ़ियों तक जाकर उन्हीं पर एक तरफ बैठकर चारों ओर की जंगल उस पानी को भी देखा। उसमें सैकड़ों तरह का कूड़ा-करकट उग गया था। देखते-देखते वैसे ही बैठ गया। जयवर्धन और चांपकमाला के चित्र एक के बाद एक उसके सामने से गुजर गये।

अकस्मात हवा का एक झोंका आया और चारों ओर के पेड़ झूम पड़े। वहाँ व्याप्त शान्ति भंग हो गई। सायंकाल की वेला थी। ऐसा लगा कि उस पार की दुनिया में जो शोरगुल होता है वह किसे पता लग सकता है। वहाँ अतिथि आ रहे होंगे। या वे लोग आने वाले ही होंगे। कोई तैयारी भी नहीं हुई है। यह सोचकर उनके स्वागत के लिए इधर-उधर दौड़-धूप करने होंगे। सब लोग अपने-अपने काम में लगाना चाहते हैं। पर वहाँ बैठकर उक सबको देखने को इच्छा भी बलवती होती जा रही थी। पौधों के नीचे से, उनके भी पैरों से, सैकड़ों लोगों की पदध्वनि स्पष्ट सुनाई दी। वह किसकी पदचाप है ? उसने चारों ओर देखा। कोई दिखाई नहीं दिया। ध्यान से कान लगाकर सुना। कृमि, कीटों के तालबद्ध स्वर के सिवा और कुछ सुनाई नहीं दिया। और ध्यान से सुनने के प्रयास करने पर उस पार एक स्त्री का आर्तनाद सुनाई दिया। अपने स्नानगृह से चांपकमाला बाहर आकर खड़ा होना चाहती होगी ? क्या उसने जो ध्वनि सुनी वह उसकी नहीं हो सकती है ? यह कैसा भ्रम ? या ऐसा संभव हो सकता है ? परन्तु उसे इस वात में संदेह न रहा कि जहां वह बैठा है वह एक मायालोक है। अथवा यह उसके किनारे विठा है। उनके बीच में ओस का झीना सा आवरण का परदा है कौन जाने की उसके वहाँ बैठे रहने से किसी को कष्ट न हो ? यह सोचकर वह वहां से उठ खड़ा हुआ। चलने की इच्छा हुई। चारों ओर के वन शोभा को उसने और एक बार निहारा। उस पृष्ठभूमि में

उसके मौन के उदर में छिपे अदृश्य सौंदर्य को सोचकर भूल सा गया। यदि आँखों से दीखने वाला सौंदर्य एक गुना है तो न दीख पड़नेवाला सौंदर्य सौ गुना है। यही सोचता वह जंगल लाँघकर रास्ते पर चलता आया। उसकी मानसिक स्थिति दूसरे लोक से लौट कर आने वाले की तरह थी। अपनी ही सोच विचार से भंवर में फंसे रहने पर भी घोड़े पर सवार होकर ठीक रास्ते से अपने कैंप पहुँच गया।

वेंकटरामय्या गोपालय्या से बात करते हुए उसी की प्रतीक्षा में बैठे थे। उन्होंने पूछा।

'तालाब की तरफ गये थे क्या ?'

'दस मिनट के लिए गया था ?'

'कैसा लगा ?'

'कैसा लगता, जैसा कल था। फिर भी वह जगह कुछ विचित्र सी है। लोग आते-जाते नहीं। इसीलिए शायद ऐसा लगता होगा।' यह कहकर अरविंद ने ऐसे ही कहा—

'यह सच है। लोग उधर जाते नहीं। जो गया उसे कुछ-कुछ महसूस हुआ। जाने दीजिए वह सब बातें। कल सुवह वापस चल रहे हैं न ?'

यह काम तो निबट चला है। जल्दी चल देना ही ठीक रहेगा। कोप्पा में भी थोड़ा काम है।'

'दस बजे निकले तो ठीक रहेगा न ?'

'इतनी देर से क्यों ?'

'पटवारी जी आप से कुछ निवेदन करना चाहते हैं।'

'क्या बात है पटवारी जी ?'

'ऐसा कोई खास बात नहीं। यहाँ तक आप पधारे हैं। मेरे घर पर भी दस मिनट आने का कष्ट करें तो, बड़ी कृपा होगी।'

'इसमें कष्ट की क्या बात है ? दो दिन आपने हमारी देखभाल की। क्या यह काफी नहीं ?'

'मैंने क्या किया ? जो आपने कहा वह मैंने करा दिया। आप यदि पधारें तो हमें बड़ी प्रसन्नता होगी। आपने इतना स्नेह दिखाया है। इसलिए इतना कहने का साहस कर पा रहा हूँ। गरीब के घर में...'

'इतनी बड़ी बात मत कहिए पटवारी जी; कौन गरीब है, कौन अमीर, इस सब की क्या जरूरत ? क्यों वेंकटरामय्या ? आपका क्या विचार है ?'

'दस मिनट को चले चलिए।'

'अच्छा तो सुबह नौ बजे ठीक रहेगा ?'

'ठीक है। आपकी बहुत कृपा हुई।' गोपालय्या बोला।

'कृपा विरपा कुछ नहीं। आप तकल्लुफ कर रहे हैं।' कहकर अरविंद हँस पड़ा। फिर जरा रुककर बोला, 'लगता है आपने वेंकटरामय्या को पहले ही पटा लिया था क्यों यही बात है न ?'

'यह तो बहुत पुराना परिचय है। वह उसे निभाये चला आ रहा है। यही हमारे लिए बहुत बड़ी बात है।'

फिर अरविंद ने वेंकटरामय्या से पूछा 'तहसीलदार आये ही नहीं ?'

'सुबह उनका एक पत्र आया था, आपने उसे देखा नहीं ?'

'हाँ गवाहों की हड़बड़ी में बिना पढ़े ही रह गया, जरा खोल कर देखिये तो। क्या लिखा है ?

'वेंकटरामय्या ने पत्र लाकर दिया ?

'ठीक है। लिखा है कि घर में कुछ काम है। वैसे वे घर ही छोड़ना नहीं चाहते। कल तो मिलेंगे ही। उनको पता है न कि हम दोपहर को वहाँ पहुँच रहे हैं ?'

'उन्हें जो कार्यक्रम भेजा गया था उसमें उसका उल्लेख था ही।'

'फिर भी सुबह होते ही एक आदमी भेज दीजिए।'

: ३० :

तालाब से लौटने के बाद अरविंद के मन में एक ही प्रश्न साल रहा था। भोजन के समय गेंकटरामय्या के पास दूसरे दिन के कामकाज के बारे में बातें करते समय, बिस्तर पर लेटते समय, वही प्रश्न बार-बार सिर उठा रहा था। गेंकटरामय्या के पूछने पर यह जगह विचित्र है। इतना ही कह दिया था। पर उसके मन में यह बात उठ रही थी कि वह विचित्र क्यों लग रहा है? वहाँ की शांति भयानक थी। चाँदनी रात में वह और भी भयानक भासित होती थी पर वह केवल शांति नहीं थी, केवल शून्य भी नहीं था। ऐसा लग रहा था कि कुछ है। कई प्रकार के शब्द सुनाई पड़ते थें। एक बार तो स्पष्ट रूप से कोई पदचाप सुनाई दी पर उससे बढ़कर एक स्त्री का आर्त्त ध्वनि सुनाई दी थी। किसकी पदचाप? किसकी आर्त ध्वनि? वे शब्द कभी कानों में गूंज रहे थे। उसको ज्यों-ज्यों याद करता त्यों-त्यों उसे लगता मानों वह शारदा की ध्वनि हो। उसने सोचा 'यह संभव है? पर कैसे संभव है? पर समय बीतते-बीतते कल की रात का विचार ही दृढ़ होने लगा। यदि चंपकमाला वहाँ है तो शारदा भी वहां हो सकती है। नहीं है यह कौन कहे ?तो वह दर्द भरी ध्वनि शारदा का अन्तिम आक्रोश हो सकता है? पानी के नीचे से वह निरन्तर दर्द से बाहर आने की आतुरता में इंतजार कर रही है? यह सोचना उसका पागलपन है। वह तो कभी चली गई थी; अब तब से तक एक बार भी स्वप्न में भी दिखाई नहीं दी। वैसे उसके चली जाने के बारहवें दिन वह दिखाई दी और उसने कहा था 'मैं जाती हूँ'। इसने पूछा था' कहाँ? वह बिना कोई उत्तर दिये चली गई थी।

आधी नींद और आधी जाग्रत अवस्था में झूपते हुए अरविंद का मन अजीव हालत में था। आने वाली नींद को आंखों के सामने आने वाले चित्र रोक रहे थे। एकदम नींद खुली फिर नींद आ गई। फिर वही चित्र। उसमें चिंता कितनी, स्वप्न कितने थे पता नहीं चल रहा है। कहीं बैठ रहा है। एक बार गाजनूर का तालाब दिखाई दिया। देखते-देखते वह तालाब ऐसा लगा मानो कल का देखा हुआ मयूरनौका का तालाब हो। एक तरफ से संध्या की सुनहरी धूप, दूसरी ओर से पूर्णिमा की चाँदनी। एक आवाज सी हुई, एकदम नींद खुल गई। 'थू' यह क्या यह न तो नींद है न स्वप्न' कहते हुए आंखे मल कर उठ बैठा। और फिर करवट बदल कर सो गया।

एक बजा होगा। नींद की गहराई कम हुयी एक और स्वप्न दिखाई दिया। मयूर नौका के तालाब के पास वह भी कुतूहल से खड़ा था। दाँई ओर मयूर नौका झूल रही थी। परन्तु उसके भीतर या बाहर कोई नहीं था अकस्मात हवा जोर से बहने लगी। हवा की रफ्तार कम होते-होते उसकी चारों ओर सफेद वर्फ का चादर सी फैल गयी। दूर को कोई चीज दिखाई न देती थी। बाईं ओर देखा तो वह नौका दिखी नहीं। अरे, अभी यही तो थी, कहाँ गई यह सोच ही रहा था कि सामने वर्फ के उस पार से कोई चल कर आता हुआ दिखाई दिया। वह तो पानी है वहां से कौन आ सकता है? इससे उसे डर लगा। स्वप्न में भी उसने आँखे मलीं। 'ओह' वह तो चंपकमाला है। उसका राजवैभव वैसा था। उसकी चाल भी वैसी थी। उसके पास आते देख कर डर सा लगा। भागना चाहता था पर पाँव न उठे। जोर से उसने आंखें वन्द कर ली। एक दो क्षण के बाद आंखें खोलने पर ऐसा लगा कि उन ध्वस्त सीढ़ियों पर जो खड़ी थी वह चांपकमाला नहीं थी वह शारदा थी। वह मुस्कराते हुए बोली—

'आपने ऐसे आंखें क्यों बन्द कर ली? मुझे देखने से आपको डर लगता है?'

'तुम-तुम-तुम शारदा हो!'

,तो और क्या ?' आप मुझे पहचान नहीं सकते ?'

'हाँ-हाँ' शारदा-शारदा-आओ शारदा ।'

कहते धीरे से सीढ़ियाँ उतरने लगा। नीचे खड़ी मूर्ति को ही आंख गड़ाये देख रहा था। एक बार संदेह हुआ पर दूसरे क्षण वह राजकुमारी सी दीखने लगी। तो वह शारदा नहीं चंपकमाला है। यह सोच कर उसने अपने को रोक लिया। वह मूर्ति उसी को देख रही थी।

उसकी समुद्र के रंग सी नीली साड़ी से पानी टपक रहा था।

उसने फिर से पूछा :

'तुम शारदा हो ?'

'तो और क्या ? ऐसा लगता है आप मुझे भूल गये ।'

'यह कभी संभव है ? आओ शारदा आओ—'

कहते उसके हाथ पकड़कर लाने के लिए नीचे उतरने लगा।

'नहीं। क्या मैं सीढ़ियों चढ़ नहीं सकती' कहते हुए उसने उसके साथ ऊपर चढ़ कर आती सी अनुभव किया।

शारदा बोली

'यहाँ बैठें ?'

यहाँ क्यों ? यहाँ बहुत सर्दी है और ओस भी पड़ रही है, घर चलें।'

'घर ?' कहते संदेह की दृष्टि डालती हैं।

'हाँ', घर चले'

'घर यह घर नहीं ? ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं ?'

उसकी बात को सुन कर यह इधर-उधर दृष्टि घुमाता है। वह दृश्य नहीं रहता है। कोई घर सा दिखाई देता है। कौन सा घर है। यह स्पष्ट दिखाई नहीं देता। अपने घर जैसे, फिर किसी और घर का सा। अरविंद को ऐसा लगता है कि बात उसके समझ में नहीं आती। उसी मानसिक स्थिति में कहता है। :

'यह किसका घर है ?'

'आप कैसी बातें करते हैं ? यह हमारा घर नहीं है ? ऐसे क्यों पूछ रहे हैं ? कहते वह अपनी स्वाभाविक मुस्कराहट फेंकती है।

'अब तुम-कब आई ?'

'मतलब

'कहाँ गयी थी ?'

'मैं कहाँ जाती ?'

'अब तुम कहाँ बाहर से नहीं आई ?

'नहीं तो। आप ही आये हैं।'

'तुम रहती कहां हो ?'

'कहाँ माने ? मैं यहाँ हूँ।'

'यही माने ?'

'यहीं माने यहीं।'

अरविंद को डर लगने से वह चारों ओर आंखें घुमाता है। वह तालाब के किनारे बैठा था वर्फ़ की ओर से कुछ दिखाई नहीं देता। बाईं ओर घूमकर देखता है। मयूरनौका खड़ी है। उसमें राजकुमारी बैठी है। वहाँ शारदा नहीं थी। 'शारदा' कहकर वह जोर से बुलाना चाहता है पर आवाज ही नहीं निकलती। यत्न करता है तो आँखें खुल जाती हैं। तब पता चलता है कि वह स्वप्न देख रहा है। पूरी नींद खुलती है तो वह स्वप्न को फिर याद करता है। पर उसमें से आधा यांद नहीं रहता है। शारदा का दिखना उसके पास आकर बैठना। 'मैं यही हूँ कहना। बात करते-करते ओझल हो जाना। आगे ? फिर वही मयूरनौका।'

अरविंद के विचार अनयिंत्रित से बहने लगे। पर थक जाने से फिर नींद आ गई।

: ३१ :

ठीक सवेरे के नौ बजे अरविंद वेंकटरामय्या के साथ पटवारी के घर पैदल गया। गोपालय्या दरवाजे पर ही उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। पुराने ढंग का घर, उस जंगल में भी कम से कम सौ वर्ष की वर्षा का मुकावला करके मजबूती से खड़ा था। बाईं ओर दो विशाल चबूतरे थे। बड़ा सा दरवाजा था। उसे लांघ कर भीतर जाने पर एक विस्तृत आँगन बाईं ओर एक आम का पेड़। दाईं ओर चंपा का पेड़। दोनों खूब लंबे चौड़े थे। भीतर जाने पर एक चौक था। जो तीनों ओर से खुला था। बड़े कटहल के पेड से बने लंबे-घर पर पुराने ढंग की छत होने पर भी साफ सुथरा दिखाई देता था। सामने के बैठक में दरी विछी थी। दीवार से लगे तकिये अरविंद की प्रतीक्षा कर रहे थे। बड़े आदर और विनय से गोपालय्या ने उन दोनों का स्वागत करके कहा—

'आप यहाँ पधारे हैं। यह देखकर मैं यह बता नहीं सकता कि मुझें कितनी खुशी हुई है।'

यह कौन सी बड़ी बात है। इसमें प्रशंसा की क्या बात है पटवारी जी। आप ने जिस स्नेह से हमें बुलाया वही मुख्य है। हमारे आने में कौनसी बड़ी बात है?'

'सच बात तो यह है कि हमने अभी तक किसी अधिकारी को बुलाया नहीं। जहाँ तक कोई आता भी नहीं और मैंने घर बुलाया भी नहीं। आपको बुलाने की इच्छा हुयी आपने स्वीकार किया। मुझें बड़ी प्रसन्नता है।"

तब तक अरविंद ने पटवारी का नाम नहीं पूछा था। वेंकटरामय्या ने

ने बताया भी नहीं था। उनकी अन्तिम बात को सुन कर अरविंद के लिए वे केवल पटवारी न रहे। उन्होंने उसे अधिकारी के रुप में बुलाया भी नहीं था। उसे ऐसा लगा कि वे एक पटवारी के समान व्यवहार नहीं कर रहे थे इसीलिए उसके बारे में ज्यादा जानने की इच्छा से उसने कहा—

'वेंकटरामय्या जो आप ने अब तक मुझे इनका नाम नहीं बताया है ?'

'मेरा नाम गोपालय्या है।'

'यह आपका गाँव है अथवा ?'

'यही है। यहाँ जन्म हुआ। यही बड़ा हुआ। किसी तरह यही चिपका हुआ हूँ।

'जंगल होने पर भी गाँव अच्छा है।'

'आप कहते हैं तो ठीक ही है।'

'ऐसे क्यों कह रहे हैं ?'

'यह एक जंगली प्रदेश है महाराज। बाहर की दुनिया से सम्पर्क नहीं यहाँ के लोगों को उसकी जरुरत भी नहीं। फिर भी कभी-कभी बड़ी ऊब होतीं है। वह भी वर्षा के दिनों में तो......'

'ऐसा लगता है वर्षा बहुत होती है।'

'बहुत वर्षा के साथ सर्दी भी शुरु हो जाती है।'

'अन्न तो अच्छा है। इस दौरे को मैं भूल नहीं सकता। चाहे किसी का कुछ लगे न लगे पर आपने परसों जो गीत सुनवाया यह बड़ा अद्भुत था। वास्तव में अद्भुत था।'

'सुनाने वाला लड़का था। यदि उसके बाप को सुनते तो कहना ही क्या ?'

'वेंकटरामय्या भी यही कह रहे थे।'

'यदि वह सुनाता तो अन्तिम दो भागों में आंसू रोकना मुस्किल हो जाता।'

यदि सच कहूँ तो अन्तिम भाग को सुनकर मैं भी आंसू रोक नहीं सका।

उसे याद करने पर बड़ा दुख होता है। पर गोपालय्या जी उसकी अन्तिम बात सच है ? चंपकमाला का दिखाई देना ?'

'लोग कहते हैं। ऐसा विश्वास करते हैं। मैंने तो कभी नहीं देखा। पर एक बात कह सकता हूँ वह जगह विचित्र है। चाँदनी रात में वहाँ जाने पर आदमी वहीं फँस जाता है। कह नहीं सकता कौनसी माया है पर वहाँ से निकलना मुश्किल हो जाता है। जैसे स्वप्न में महसूस होता है। वहाँ रहने की इच्छा नहीं होती। वहाँ से निकलना चाहो तो निकला भी नहीं जाता। वहाँ से निकलने की इच्छा के साथ डर भी बढ़ने लगता है। यह कैसे होता है यह नहीं कह सकता। पर ऐसा होता है यह सच है।

'आपको ऐसा हुआ ?'

'दो बार। बाद में उस तरफ जाना ही मैंने छोड़ ही दिया। आमतौर पर वहाँ कोई जाता भी नहीं है।'

बड़ा विचित्र है। कल शाम को मैं वहाँ गया था। पर मुझे कुछ हुआ नहीं पर यह सच है कि जगह विचित्र है।'

'अंधेरा होने से पहले आप लौट आये। वह बात रहने दीजिए। वह गीत तो मेरे लिए अद्भुत था। मेरे लिए तो वह कभी न भूलने वाला अनुभव था।

'इस सबका प्रबन्ध करने वाले भी वेंकटरामय्या ही है।'

'मैं ?' यह अच्छी बात है गोपालय्याजी'

'पहले उसकी बात किसने उठाई। यदि आप न पूछते तो मेरा ध्यान उस तरफ जाता ही न था।'

'यहाँ तक तो ठीक है। पर उस लड़के को ढूँढ ले आना……'

'वह भी अकस्मात हो गया। वह गाँव में नहीं था। पर उसी दिन लौटा और रास्ते में मिल गया।

'ठीक है। अच्छा ही हुआ।' गोपालय्या खड़े-खड़े ही बात कर रहे थे। यह देखकर अरविंद बोला, 'आइए। गोपालय्या बैठिये। किसी प्रकार के संकोच की आवश्यकता नहीं। यहाँ मैं अधिकारी नहीं और आप पटवारी

भी नहीं। यदि यह बात होती तो मैं यहाँ तक आता ही नहीं। आइऐ। बैठ जाइए।'

'गोपालय्या बड़े संकोच से आकर दरी के एक किनारे पर बैठ गया।

'यह ठीक है। बच्चे कितने हैं ?'

'दो। एक लड़का, एक लड़की। बड़ा लड़का ही है।'

'सरकार के कहने से पहले आपने दो चाहिए तीन नहीं का सिद्धांत अपना लिया' यह कहते हुए अरविंद हँस पड़ा।

'सरकार के नियम और प्रतिबन्ध से क्या होता है। भगवान की इच्छा है। मुझे तो ऐसा लगता है।'

वह बात कहते समय गोपालय्या की ध्वनि में खुशी न थी। कोई अस्पष्ट व्यथा उसके मन में से झांक रही थी। उसने अरविंद को एक क्षण के लिए छू लिया।

निस्पृह हर एक आदमी का अपना-अपना विश्वास है। सोच कर वह चुप हो गया। गोपालय्या को पहली बार देखने से ही एक सीधा-सादा मनुष्य दिखता था। उसमें किसी भी प्रकार का असन्तोष नहीं था। वह किसी व्यक्ति को दुख नहीं देता। इस प्रकार का धैर्य होना बड़ी बात है। नहीं तो इस जंगली प्रदेश में यह चाहिए, वह नहीं चाहिए' कहते हुए चारों ओर के वातावरण से मिलजुलकर रहना संभव नहीं' यह सोचते हुए वेंकटरामय्या ने जानबूझ कर हँसते हुए कहा : '

'इसे यह जंगली प्रदेश बहुत प्रिय है। शहर पसन्द नहीं।'

'यहीं जन्म हुआ और यहाँ बड़े हुए। फिर और क्या करें ?'

अरविंद ने पूछा, 'फिर भी यह कठिन दिखाई नहीं देता ?'

'यहाँ हमारा जीवन बीत गया साहब। दूसरी जगह जाने पर उसके अनुसार ढलने में दिक्कत होती है। वर्षा के दिनों में एक दो बार ऊब हो जाती है यह ठीक है। पर किया क्या जाये ? यही भूमि है न जो हमें अन्न देती है।

'फिर श्रीमान क्यों कह रहे थे कि यह पटवारी गीरी नहीं चाहिए ।' वेंकटरामय्या ने जानबूझ कर छेड़ा है ।

'पटवारीगिरी नहीं चाहिए कहने से यह कहाँ से अभी निकला कि मैं जाँच पड़ताल नहीं करता । उसमें अनावश्यक झंझटों को मोल लेना पड़ता है । आजकल कोई किसी की बात नहीं सुनता । यदि अधिकारियों को रिपोर्ट करें तो रिपोर्ट करने का ही एक काम हुआ ।'

'यहाँ कोई दौरे पर नहीं आते । रेवेन्यू इन्सपेक्टर तक नहीं आतें ?'

'यदि मैं कहूँ तो पता नहीं आप क्या समझेंगे । जहाँ तक मेरी जानकारी है यहाँ तक पधारने वाले आप ही अकेले हैं ।' यह कह कर गोपालय्या चुप हो गया ।

एक दो मिनट तक दोनों चुप थे । दाईं ओर के दरवाजे पर कमलम्मा ने संकेत दिया कि नाश्ता तैयार है । गोपालय्या ने प्लेटे लाकर रखीं ।

'हम सवेरे नाश्ता कर चुके हैं । इतनी आवश्यकता नहीं थीं ।'

'कोई ज्यादा नहीं । एक मीठा और एक नमकीन जितना चाहें उतना ही लीजिए ।'

कमलम्मा एक प्लेट में केले ले आई । अरविंद ने एकदम मुड़कर फिर आगे जाकर झुककर नमस्कार किया । तब वह बोली ।'

'अरे यह क्या ? आपको मुझे इस प्रकार नमस्कार नहीं करना चाहिए था ।' वह संकोच से लौट रही थीं तो अरविंद बोला,

'देखिए, मेरी मां नहीं है । आप जैसे लोगों को जब भी देखता हूँ मुझें मां की याद आ जाती है । अब भी मैंने अपनी मां को नमस्कार किया है ।'

'अच्छी बात है । बेटा सुखी रहो । भगवान आपको दीर्घ आयु दे ।'

कमलम्मा की आंखों में आंसू थें । वह भीतर गई । अरविंद ने फिर बैठकर प्लेट को अपनी ओर सरकाया । उसकी सज्जनता ने सबको मोह लिया था । नास्ता करते अरविंद ने पूछा ।

'बड़ा लड़का क्या करता है ?'

'हासन में है। सरकारी हाईस्कूल में अध्यापक है।'

'और बेटी ?'

'वह अब यहीं है। कल तक हासन में ही कालेज में पढ़ती थी। बी० कर लिया। अब आगे वर ढूंढना है।'

'आगे पढ़ाया नहीं जा सकता ?'

'कैसे हो सकता है। आगे पढ़ने के लिए बेंगलूर या मैसूर जाना पड़ता है। वेटा हासन में था तभी इतना हो गया।'

वेंकटरामय्या ने आगे पूछा :

'कहाँ है कुमुद ?'

'भीतर होगी।'

कालेज जाकर बी० ए० पढ़ना व्यर्थ हुआ। भीतर ऐसे सिकुड़ कर बैठना चाहिए या आपने मनाही किया ?"

'मैं क्यों मना करुँ ? वह सदा से ऐसी है। यह कहकर उसने भीतर की ओर देखकर आवाज दी कुमुद काफी लाओ, वेटी।"

कुमुद का बाहर आने का विचार नहीं था। कमला ने पहले केले बाहर ले जाने को कहा भी था पर उसने नहीं माना। छिपकर दरवाजे की संधि से बाहर बैठे लोगों को देखा था। गोपालय्या अब सीधा बुला रहे थे अतः बचना सम्भव नहीं था। जल्दी से साड़ी बदली, बाल ठीक किए, मुंह पर हलका सा पौडर लगाया और काफी के तीन गिलास थाली में रखकर वह दहलीज तक आई वेंकटरामय्या बोले,

'ले आओ वेटी' इस बात ने अरविंद को उस ओर अकर्षित किया, नहीं तो अरविंद का ध्यान उस ओर नहीं जाता। अरविंद ने ज्यों ही उसे देखा त्यों ही उसे ऐसा लगा जैसे बिजली गिर गई। आँखों के आगे अंधेरा छा गया। हाथ का चम्मच छूटकर जमीन पर गिर गया।

यह कुछ क्षणों में ही हुआ। अरविंद के अलावा और किसी के समझ में नहीं आया कि क्या हुआ। शायद उसको भी पता न चला हो। जब वह

आगें आई तो उसे वह देख ही नहीं सका । यदि वह वहाँ नहीं रहता तो वह देखने वाला नहीं था । और एक बार देख फिर देखने का धैर्य नहीं हुआ । अरविंद का भीतरी संघर्ष किसी को मालूम नहीं हुआ । उसके हाथ का चमचे का छूटना भी शायद किसी को नहीं दिखा । यदि देखा भी होगा तो यही सोचा होगा कि यों ही हाथ से छूट गया है । पर उसके हाथ से चमचा छूटना अनिवार्य था । उसका कारण उसके अतिरिक्त और कोई नहीं समझ सकता था ।

कुमुद काफी की ट्रे बीच में रखकर जब लौटने लगी तो गोपालय्या ने पूछा ।

'सिद्धण्णा को पान लाने को कहा था । दे गया ?'

दे गया । ले आती हूँ" कह कर वह भीतर चली गई । अरविंद ने जब वह लौट रही थी उसे फिर से देखा । उसकी चाल उसकी ध्वनि, उसकी देह ने अरविंद को दूसरी दुनिया में पहुँचा दिया था । जब से वह उस गाँव में आया तबसे किसी न किसी प्रसंग में शारदा की याद आती ही जाती थी । शारदा के साथ विताए अनेक चित्र आंखों के सामने खड़े हो जाते । विशेष ध्यान न देकर कुमुद को देखने पर भी जब वह काफी की ट्रे लेकर दरवाजे पर खड़ी हो गई और उसे निचे रखने के लिए आगे आई, लौटने लगी, पिता के प्रश्नों का उत्तर दिया तब अरविंद ने हठ करके अपने मन को एक क्षण के लिए काबू में लिया । एक क्षण के लिए उसने उसे शारदा समझा पर दूसरे क्षण उसकी बुद्धि ने समझाया 'तीन दिन से किसी कारण उसके बारे में सोच रहा हूँ । इसलिए हर जगह वही दिखाई देती है । प्रसंग वश रहे । वास्तव में मन का इस प्रकार भटकना हानिकारक होता है । मनको काबू में रखना चाहिए ।' उसने अपने आपको समझाया ।

पान सुपारी की तश्तरी रखने के लिए कुमुद जब दोबारा आई तब अरविंद उसको देखने के कौतूहल को रोक नहीं सका, मन फिर भ्रम में पड़ गया । उसने उसे शारदा समझा फिर बुद्धि ने समझाया, तुम्हारा मन ठीक

नहीं, तुम जो चाहते हो वह सब जगह देख रहे हो। तुम्हारे सामने ही शारदा गाजनूर में डूब नहीं गई।' फिर अरबिंद होश में आया। उसने मन से कहा-यह ठीक नहीं इतना डोलने नहीं। वह चली गई। उसकी कहानी वहाँ खतम हो गई। बार बार दुखी होने से लाभ, पर उसका मन शारदा की ओर भागता था। कुमुद में उसे शारदा दिख रही थी। छिः यह था पागलपन' कहकर वह चुप हो गया।

इतना मानसिक संघर्ष केवल दो मिनट ही रहा या तीन मिनट रहा होगा। परन्तु वह तीन मिनट में भी अनजाने में ही उसका मन कहीं से कहीं पहुँच गया था। उसे ऐसा लग रहा था वह यहाँ है ही नहीं। हाथ में लिया काफी का गिलास वैसे ही रह गया था। गोपालय्या ने इसे देखकर पूछा, 'काफी में चीनी कम है?'

उसने उत्तर दिया, 'नहीं ठीक है।' 'उस एक प्रश्नोत्तर से अरविंद का मन वास्तविक जगत में पहुँच गया। अरविंद की अन्यमनस्कता को वेंकट-रामय्या ने भी अनुभव किया पर वे यह नहीं सोच सके कि वहाँ कुमुद आने से उसका कोई संम्बन्ध है। एकदम अपने आप भूल जाने फिर क्या कहा कहने की अरबिंद की इस आदत का उन्हें परिचय था। यह अनुभव उनके लिए नया नहीं था। कल सायंकाल ही उस विवादास्पद भूमि के नक्शे को देखते समय ऐसा नहीं हुआ था। वे यह सोचकर चुप हो गये थे कि वह अरविंद का एक स्वभाव था। अरविंद का मन सहज स्थिति था। कुमुद का आकर खड़ा होना और चले जाना देखकर वह उस बात को याद किये बिना वह रह नहीं सका। वह बार बार उसी को याद करने लगा। यों कहना चाहिए कि उसका चित्र उसके सामने खड़ा होने लगा। उसी मानसिक स्थिति में उसने काफी पी। एक दो मिनट गांव इधर उधर की बात करने के बाद वह घड़ी देखकर बोला—

दस बजने वाले हैं वेंकटरामय्याजी अब चलना चाहिए।'

'जी हाँ' चलना ही है।

'आप भी अभी चलते हैं।'

'दोपहर तक रहना पड़ेगा। सारे सामान भिजवाने के बाद ही चल सकता हूँ।'

बिलों का भुगतान हो गया ?'

'वह काम भी है। इसलिए कहाँ............'

'वह सब ठीक देख लीजिए। आप कल सुबह भी चल सकते हैं।

वेंकटरामय्या ने भी ऐसा ही सोचा था। उन्होंने अरविंद कोप्पा तक पहुँचा कर शाम तक वैन के लौट आने का भी प्रबन्ध कर दिया था।'

अरविंद बोला :

'अब चलूँ ?'

चलने का समय हो गया था पर कोई भीतरी कारण उसे रोक रहा था। कुमुद को और एक बार देखने का स्पष्ट इच्छा थी पर वह अपने आप बाहर न आये तो वह क्या कर सकता था। यह सोचते हुए वह उठा 'यह कौन सी माया है या कौन सी अदृश्य शक्ति का हाथ जिसने शारदा को इस प्रकार दिखाया। इतने में गोपालय्या के घर में सूचना दी, 'देखो यह जा रहे हैं। "अरविंद ने सोचा कि शायद उसके मन की इच्छा पूरी हो। हुआ भी ऐसा ही। कमलम्मा और कुमुद दोनों दरवाजे से बाहर आकर खड़ी हुईं।

'अच्छी बात, चलता हूँ अम्मा जी नमस्कार' कहते अरविंद ने हाथ जोड़े।

कुमुद को आंख भर कर देखा। वेंकटरामय्या के साथ गोपलय्या, कमलम्मा और कुमुद तीनों फाटक तक आये। अरविंद ने मुड़कर और एक बार नमस्कार किया। अनजाने में उसका मन दुखी था।

मैदान में वैन खड़ी थी। डेरों को उतार कर लपेटा जा रहा था। समान बांधे जा रहे थे। दो दिन बड़ा जोर शोर रहा था। रेल के चले जाने के बाद रेलवे स्टेशन में शून्यता छा जाती है वैसी शून्यता वहां शुरु हो गई थी। यह तो उसी ने कहा था। उस दौरे में कभी न भूलने वाला एक अनुभव हुआ। यदि वह अपने मन का विश्लेषण करता तो उसके अनु-

भव एक या दो नहीं थे पर मुख्य दो अनुभव थें। वह दो हैं या दोनों मिल कर एक हैं सोचते हुए उस वन प्रदेश में जब वह आगे बढ़ रहा था तब उसके मन में एक के बाद एक तीन चित्र दिखाई दे रहे थे।

चंपकमाला, शारदा, कुमुद। तीनों अस्पष्ट दिखाई दे रहे थें। जब मन काबू में आता तो कहता, 'यह बड़ा विचित्र है। उसे ज्यादा विवरण केवल कल्पना और भ्रम है। कल्पना और भ्रम जब मन में स्पष्ट रुप से-बैठने लगते हैं तो एक प्रकार के सत्य का रुप धारण करता है। बुद्धि को उसे मिटाना नहीं चाहिए। इस बात का वह समर्थन करने लगा।

: ३२ :

अरविंद वहाँ केवल दो दिन रहा फिर भी उसकी सज्जनता ने गांव वालों को मोह लिया था। उसने कहा था कि वह तहसीलदार के साथ बात करके गांव के लिए एक दो आवश्यक सुविधाएं उपलब्ध कराएगा। मुख्य रुप से कोप्पा के बड़े रास्ते से मिलने के लिए एक छोटा रास्ता बनाना पहला काम था। तालाब के दाँई ओर की समतल भूमि के जंगल को साफ करके खेती लायक बनाना। तालाब का पानी मिलने से खेती भी अच्छी होगी और तालाब भी सुन्दर लगने लगेगा। उस गांव केबारे में इतनी आसक्ति दिखाने वाला वह पहला अधिकारी था। इससे पहले उन्होंने किसी को देखा भी नहीं था। इसलिए उसके इस छोटे दौरे की बात को गांव वाले आसानी से भूल नहीं सकते थे। यदि किसी को थोड़ा असंतोष हुआ तो वह शंकरनायक को। गोपालय्या के घर एक सब-डिवीजनल आफिसर द्वारा अतिथ्य स्वीकार करने से उसके मन में ईर्ष्या उत्पन्न हुई। यह सोचकर कि गोपालय्या

का पलड़ा जरा भारी हुआ। वह उन्हें अपने घर बुलाना चाहता था परन्तु वेंकटरामय्या ने यह कहते हुए मना कर दिया कि वह भी उस केस से संबंधित है अतः उनको घर बुलाना उचित न होगा। उसके मन में यह घटिया विचार बैठ गया कि वह गांव वालों के सामने गोपालय्या एक बड़ा आदमी हो गया। परन्तु जिन गवाहों को वह ले गया था उनका गोपालय्याने आदर से सत्कार किया था। इसलिए उसे एक अच्छा ही आदमी है समाझकर चुप हो गया।

खुद खड़े होकर सभी सामानों को भेजने की व्यवस्था करने में दोपहर हो गई। कह करके वेंकटरामय्या ने गोपालय्या के घर में ही भोजन किया और गप्पे लड़ाते रहे। दोपहर के आराम के बाद दिन ढलते समय गोपालय्या के साथ उसकी खेती पर हो आये। गोपालय्या की खेती बहुत लम्बी चौड़ी न थी पर जितनी थी उसका अच्छी तरह इस्तेमाल करते थे। एक तरफ कुछ फलों के पेड़ लगा रख थे और एक कोने में साग सब्जी। आधा एकड़ में सुपारी किनारे-किनारे कुछ नारियल और बाकी में धान उगा रखा था। 'अच्छा है आपने परिवार के लिए जितनी सुविधा चाहिए उतनी कर रखी है' वेंकटरामय्या के यह कहने पर गोपालय्या बोला, 'यदि इतना भी न करे तो घर कैसे चलेगा ? ' पर इतने से काम चल जाएगा' 'यह पूछे जाने पर वह बोला, अवश्य, 'हम दो या तीन जीवों को कितना चाहिए ? उस तरफ सुपारी के पेड़ लगा रखे हैं, देखा ? उससे परे की जमीन भी मेरी है पर वह मैंने सिद्धण्णा के लिए छोड़ रखी है। वह अपने लिए काफी पैदा कर लेता है। वह सब उसी के लिए ठीक है। जितनी मेहनत करता है उतना मिल जाता है इसी कारण वह मेरे सब काम में हाथ बटाता है। कहना चाहिए सब कुछ वही करता है। इसलिए मैं रहूँ या न रहूँ वही सब देखभाल कर लेता है। वैसे देखा जाये वह हमारी जमीन पर खेती करता है वह जमीन बहुत ज्यादा भी नहीं है। उसकी जरुरत भी नहीं है। ' वेंकटरामय्या को आश्चर्य हुआ। उन्होंने पूछा, 'बटाई पर नहीं दे रखी ? ठीक है पर सभी

झगड़ें यहाँ से आरम्भ होते हैं। जिसकी हमें जरुरत नहीं यदि उसे कोई दूसरा इस्तेमाल करे तो क्या नुकसान है। बटाई देने पर कुछ पैसे या धान अवश्य आता है पर दोनों में विश्वास नहीं रहता। उसके विना हम जिंदा नहीं कैसे रह सकते है ?' गोपालय्या का यह कथन साधारण सा लगने पर भी उससे यह भाव स्पष्ट हो जाता था कि खेती-बाड़ी में सब सुख से रहने का एक उदाहरण है। हमारे यहाँ खेती वाड़ी की समस्याओं का मूल कारण गोपालय्या जैसे उदार और विना परिश्रम किसी दूसरों को न देने वाले लोंगों के अभाव के कारण हैं।

रात के भोजन के बाद फिर वातचीत करने वैठे। उसमें कमलम्मा भी शरीक हुई। गोपालय्या बोले :

'आपके अफसर बहुत अच्छे व्यक्ति हैं। मैंने कुछ और ही समझा था। मुझें सन्देह था कि हमारे घर आयेंगे कि नहीं।'

'ऐसी कोई बात नहीं, उनमें घमंड नाम मात्र का भी नहीं। परन्तु आफिस में तो काम के बारे में किसी प्रकार की ढील पसन्द नहीं करते हैं। उस दिन का काम उसी दिन हो जाना चाहिए। उनके आने पर शुरु में तो एक दो कलर्क वदली करा कर चले गये।,

'इससे उन्हें बुरा लगा था ?'

'इसमें वुरा क्या लगना, वे काम करना ही पसंद नहीं करते थे। जो कागज आते थे उनको उठाकर रख देते और उससे संबंधित लोग जब तक उनसे नहीं मिलते तब तक चुप वैठे रहते। ऐसी स्थिति में आगे की कार्यवाई कैसी होती है वह तुम जानते ही हो। ऐसा यहीं चल सकता है ? इनके रहते हुए वह सब संभव ही नहीं था। काम समाप्त होने के बाद न यह अधिकारी जैसे रहते हैं। और न तो दूसरों को अपने मातहतों के समान मानते हैं। सब एक से होते हैं। इतने प्रेम से देखते हैं।

'ऐसे लोग बहुत कम होते हैं भगवान उनको सुखी रखे।

'पर में उनको कुछ सुख नहीं, उन्होंने अपना दुख तो एक दिन भी नहीं

बताया। मेरे साथ ही सैंकड़ों विषयों पर बात करते हैं पर उन्होंने अपनी मृत पत्नी के बारे में एक दिन भी बात नहीं उठाई।

'क्या हो गया था ?'

'अकस्मात ही हो गया। शिवभोग्गा में जब ये सब-डिविजनल आफिसर थे। गाजनूर के तालाब में नौका उलट गई। अखबार में भी छपा था।

'कमलम्मा दुखी होकर बोली, 'बेचारे। उम्र भी तो बहुत छोटी है।'

'अरे दूसरी शादी हो सकती है। किस बात की कमी है। आयु भी छोटी है। बच्चे भी नहीं। कोई भी लड़की देने को तैयार हो जाएगा।'

'उस लड़की की बहिन ही है, ये ही तैयार नहीं होते। सुना था वे प्रयास भी कर रहे हैं पर पता नहीं कितना सच है कौन जाने ?'

'कहां के हैं ?'

'कौन ? इनके ससुराल वाले ? तुमकूर के हैं। उनका नाम नागेशराव है। न्याय विभाग से निवृत्त होकर आज कल बेंगलूर में हैं।

'क्या वे शिवभोग्गा में जज थे ?'

'हो सकता है। मुझे मालूम नहीं।

कमला बोली, 'कोई भी हो ऐसे व्यक्ति का हाथ पकड़ने के लिए पिछले जन्म का पुण्य चाहिए।'

'बाद में गोपालय्या ने पूछा, 'तो कल चलना ही है ?'

'नहीं तो कैसे चलेगा ? वैसे आज ही चलना था। चल भी देता पर इच्छा हुई कि एक दिन ठहर कर जाऊँ।

'अच्छा हुआ, अब पता नहीं कब भेंट होगी। फिर से दो या तीन साल बाद।'

'हाँ, तुमसे भेंट करने के लिए मुझे ही आना पड़ेगा। तो तुम्हारा कहना ही ठीक है।'

'हम कैसे आ सकते हैं ? गाँव छोड़कर आना ही मुश्किल है।'

'कोई मुश्किल नहीं यदि मन चाहे तो।' इच्छा होनी चाहिए न। वह मुख्य है। वहाँ बैठी कमला ने अपनी बात कही। वहाँ बैठे वह ऊब

गई थी। गोपालय्या के लिए यह कोई नई बात नहीं थी। इसलिए वह बोला;

'इसे यहाँ आकर छः महीने रहने के बाद बाहर जाने की इच्छा होने होने लगती है। जायें भी तो कहाँ ? बेटे के घर जाना । वहां जाने के बाद फिर वही बात। फिर लौटने की जल्दी पड़ी रहती है बात यह है कि इन्हें घूमने की पड़ी रहती है।'

'बहुत घूम लिया। यहाँ आये हमें कितने दिन हो गये ?'

'वह रहने दो। तुम कह रहे थे माधव से कोई पत्र आया है।'

'पत्र आया है। जाना भी है। किसी एक वर के बारे में लिखा है। आ जायें तो अच्छा होगा। बँगलूर जाकर लड़की दिखाकर आ सकते हैं। मैं भी सोच रहा हूं।'

कमला हँसते हुए बोली, 'आप सोचते रहिए उस लड़के की शादी भी हो जाएगी।'

'गोपालय्या हँस कर बोला, यदि ऐसा हुआ तो वह हमारे नसीब में नहीं यही समझना चाहिए।

'यह सब ठीक है। वैसे हासन जाना ही है। इन्हें भी जाने की इच्छा है। कुमुद भी ऊब गई है। चल दो रास्ते में चिक्कमगलूर पड़ता है।"

'कोई जरुरी नहीं रास्ते में पड़ना ही चाहिए" कह कर हँसते हुए गोपालय्या बोला, 'नरसिंहराजपुर होते हुए भी जा सकते हैं।'

'चिक्कमगलूर से बचना हो तो सैकड़ों रास्ते हैं। यह बात नहीं कह रहा हूँ मैं। हमारे यहाँ एक दो सप्ताह रहकर जाने की बात कह रहा हूँ।

'एक दो सप्ताह।'

'हमें तो कोई कष्ट नहीं होगा। मेरी घर वाली को तो कोई आ जाये तो उत्साह का ठिकाना ही नहीं रहता। कोई नहीं आये तो उसे बुरा लगता है।"

'कमला उसकी तारीफ करते हुए बोली, 'पद्मा को क्या मैं नहीं जानती ? घर की औरतें तो ऐसी ही होनी चाहिए।'

'ठीक है सोचेंगे। अगर जाना भी हो, दो सप्ताह लगेगा ही। खेत पर

कुछ काम है। उसे निबटाने के बाद एक दो महीने घूम सकते हैं।'

'ऐसा ही करो। ठीक है। पर एक बात, चिक्कमगलूर में रुके बिना हासन का रास्ता पकड़ी तो...'

कमला ने अपने हृदय की बात को व्यक्त करते हुए कहा, 'तब तक आप अपने बेटे को बुला ले तो वह कुमुद को भी देख सकता है।'

'जाते ही चिट्ठी लिखता हूँ। देखें उसकी मर्जी क्या है? आप तो जरुर आइए। बाद की बातें बाद में।' कहकर वेंकटरामय्या ने उस विषय को वहाँ समाप्त किया।

बाद में आधे घंटे तक इधर-उधर की बातें करते बैठें रहे। कमला को ऊघते देखकर वेंकटरामय्या बोले, 'इन्हें नींद आ रही है। पता नहीं सुबह कितने बजे उठती है। चलो, हम भी सोयें। सुबह जरा जल्दी उठना पड़ेगा।'

: ३३ :

दूसरे दिन सुबह ग्यारह बजे वेंकटरामय्या घर पहुँचे। तब उनकी पत्नी दूसरा बेटा नारायण और छोटी बेटी नंदिनी उनका रास्ता देख रहे थे। उन्होंने कल शाम को ही पहुँच जाने को कहा था। कोई समाचार न आने से पत्नी भीतर ही भीतर चिंतित थी। काफी देती हुयी बोली 'कल शाम से नारायण राह देख रहा था। उसे, परीक्षा की फीस देनी है। आज ही अन्तिम दिन है। छटपटा रहा है।'

'ठीक है तुम अपने पास से नहीं दे सकती थी? मेरे जाने के समय से ही उसने कहा था। मैं जल्दी में भूल गया था। अब दे दी?

'आप आज ही आएंगे सोचकर चुप रही ?'

'ठीक है, कहकर उन्होंने नारायण को जरुरी पैसे दिये। दस मिनट में खाना खा कर दोनों वच्चे स्कूल गये। वेंकटरामय्या हँसते हुए पत्नी से वोले, एक अच्छी खबर लाया हूँ। रामू के लिए एक कन्या देख कर आया हूँ।"

'किस तरफ की ?'

'हमारे वागूर के पटवारी गोपालय्या को तो जानती हो न। उसी की लड़की है। देखने में वड़ी सुन्दर है। हाल ही में बी० ए० पास किया।'

"वह माने तव न ? उसका तो शादी की ओर ध्यान ही नहीं। पढ़ाई पढ़ाई की रट लगी रहती है। यह खत्म होती ही नहीं दीखती।'

'पढ़ने दो। हम क्यों मना करें ? यहीं मौका है। सारी व्यवस्था उसने अपने आप को है। हमसे एक पैसा भी नहीं माँगता। जितना पढ़े अच्छा ही है।'

'सब ठीक है पर यह नौकरी कब शुरु करेगा ? शादी करके घर कब बसाएगा ? नौकरी क्या आसानी से मिल जाती है ? मुझे तो रामू की एक बात भी समझ में नहीं आती।'

'इतना पढ़ने-लिखने के बाद एक नौकरी मिलना कठिन होगा ? मैंने गोपालय्या से कहा कि उसे एक नौकरी मिल जाये। तो उसने भी यह बात मान ली है। उन दोनों की वड़ी इच्छा है। मैं बता कर आया हूँ देखें संयोग कैसा है।'

'लड़की देखने में कैसी है ?

'सुन्दर है। कालेज में पढ़ने पर भी कोई आडम्बर नहीं। मैंने योंही पूछा कि आगे पढ़ना चाहती हो, उसने मना किया।' जो पढ़ा है यही बहुत है कहा। मुझे तो वह बात बहुत अच्छी लगी।'

'आपको अच्छी लगने से क्या लाभ ? रामू को पसन्द आनी चाहिए। पहले तो उसका विवाह करने की ओर ध्यान जाना चाहिए। बाद में उसे देखकर मान ले तब न ?"

'पहली बात ही कठिन है। दूसरी में कोई कठिनाई नहीं।'

'इतनी अच्छी है ?

'तुम ही देख लेना। दो सप्ताह के बाद आ भी सकते हैं। हासन जाते हुए आऊँगा कहा था।'

'वहाँ कौन है ? कोई रिश्तेदार है ?'

'उसका बड़ा बेटा माधव वहाँ नहीं हाँ तो हाल में उन्हें कहाँ देखा था ?'

'उनका नाम कमला है न ? यहां जब आये थे तभी एक दो बार देखा था। तब लड़की हाई स्कूल में पढ़ती थी शक्ल याद नहीं।'

'देखें क्या बनता है। रामू को पत्र लिखता हूँ।'

कहते वागूर से लाये केले के गुच्छे को खोलकर लटकाया जो गोपालय्या ने उसे दिया था। कुछ सुपारी काली मिर्च और साग सब्जी भी वेंकट-रामय्या लाये थे। वह सब देखकर पद्मा बोली :

'लगता है गोपालय्या अच्छे खाते पीते हैं।

'हाँ, खास नहीं पर ठीक है।'

पत्नी को निराशा हुई। वह बोली :

'इतना कुछ देकर भेजा है। इसलिए कहा।'

'तब यह सब देने के लिए खाता पीता आदमी होना चाहिए था ? यो मन होना चाहिए। वह बड़ा उदार है।' इतना कहकर गोपालय्या की खेती बारी आदि की बातें बताथी।

: ३४ :

गोरालय्या के बड़े बेटे का नाम माधव होने पर भी सभी उसे 'भैया' बुलाते थे। घर में माँ बाप प्यार से उसे ऐसा पुकारते थे पर स्कूल में जाने के बाद भी माधव के नाम के पीछे भैया चिपका हुआ था। समय बीतते भैया, भैया मास्टर हो गया। चिक्कमगलूर में भी माधव राव पूछने पर लोग 'भैया मास्टर के बारे में पूछ रहे हैं कहते। हासन आने के बाद के चार वर्षों में उसे स्कूल में सब भैया मास्टर ही कहते थे। गत दो वर्षों से हेडमास्टर के सामने वाले घर में किराये पर रहने लगा था। घर खाली होने पर श्रीनिवासराय ने ही उसे 'भैया मास्टर को दिलाने का यत्न किया था।

श्रीनिवासराय के बच्चे नहीं थे। इसलिए माधव के दो बच्चे छः वर्ष की सरला और चार वर्ष का संपत आमतौर पर श्रीनिवासराय की पत्नी सुनन्दा के पास ही रहते थे। अपनी पत्नी रुक्मिणी से अनेक बार माधव ने कहा था :

'इस घर में आकर तुम्हें बड़ी सुविधा हुई है। बच्चों की देखभाल के लिए लोग मिल गये।'

तब वह बोली, 'बहुत अच्छे हैं। बेचारे हमारे बच्चों को ही इतना प्यार करते हैं। यदि उनके अपने बच्चे होते तो पता नहीं क्या करते।

माधव ने कहा करते क्या तुम्हारी तरफ दूसरों के घर भेज देते।'

इस पर रुक्मिणी बोली :

'मैं क्या बच्चों को उनके घर जान बूझ कर भेजती हूँ। वे अपने आप

चले जाते हैं। या वे स्वयं ही प्यार से बुला ले जाते हैं, मैं क्या करूँ ? चाहे तो कल से मना कर दिजिए।'

मना करने से वे मानेंगे ? यदि हम घर में रोक भी लेंगे तो सुनंदा वहिन ही आकर ले जायेंगी। इससे यही अच्छा है।' कहकर वह हँस पड़ा था। परिश्रम करके निष्ठा पूर्वक काम करने के कारण वह श्रीनिवासराय का प्रिय व्यक्ति बन गया था और उसी प्रकार रुक्मिणी भी बच्चों के कारण सुनंदा वहिन की प्रिय भी थी। इस प्रकार दोनों घरों में एक प्रकार का स्नेह संवंध उत्पन्न हो गया था।

शहर में जब फ्लू फैला तो ऐसा लगता था कि उससे कोई नहीं बचेगा श्रीनिवासराय की बारी आई। सुनंदा बहिन को भी बारी आई। यहाँ से सरला संम्पत भी उसकी लपेट में आ गये। दोनों बच्चों ने जब बुखार के कारण विस्तर पकड़ा तब रुक्मिणि से ज्यादा सुनंदा बहिन को घबड़ाहट हुई। बच्चे ठीक हो ही रहे थे कि माधव और रुक्मिणी ने विस्तर पकड़ा। बुखार से कमजोर होने पर भी सुनंदा बहिन को ही सबकी देखभाल करनी पड़ी। आठ दिन के बुखार के कारण माधव एकदम सुस्त हो गया था। रुक्मिणी और भी कमजोर हो गयी थी। एक दिन शाम को श्रीनिवासराय ने सलाह दी :

'देखिए भैया मास्टर, बुखार उतर जाने पर भी यह कंबख्त फ्लू बहुत कमजोर कर देता है। आपकी घरवाली भी बहुत कमजोर हो गयी है। बच्चों का भी वही हाल है। कुमुद को क्यों नहीं बुला लेते ? बहुत सुविधा होगी। वह वहाँ कर भी क्या रही है ? तुरन्त चिट्ठी लिखकर बुला लीजिए।'

माधव बोला, 'पत्र लिखा था।

'बुखार आने के बाद लिखा था ?'

उससे पहले लिखा था।

यह मैं जानता हूँ कुमुद के लिए जो वर मैंने सुझाया था उसके लिए

लिखा था न ? अब की परिस्थिति वताइए सब आ जायें तो बच्चे भी खुश होगें। आप दोनों को भी सुविधा होगी।'

माधव को श्रीनिवासराय की बात ठीक लगी। उसे मानकर उसने दूसरे दिन ही पिता को चिट्ठी लिखी। रुक्मिणी ने भी यही बात कही थी "माँ जी को गये कितने दिन हो गये। सबको आने को लिखे। हम लोगों के यहाँ आने के बाद वे आये ही नहीं।'

: ३५ :

शारदा के गुजर जाने के बाद भी उसके माता पिता ने अरविंद के घर से संबंध नहीं तोड़ा था। हाल में नागेशराय न्याय विभाग से निवृत्त हुए थे। चार पाँच साल तक बेंगलूर में ही रहे। उसका कारण यह था कि उनका दूसरा लड़का कृष्ण विद्युत इंजनीयिरिंग पास करके वहाँ एक कम्पनी में काम कर रहा था।

इसलिए नागेशराय अपने स्थान तुमकूर के बदले जयनगर एक्सटेशन में घर बना कर रह रहे थे। उनकी पत्नी पार्वती को भी बेंगलूर बड़ा प्रिय था। तुमकूर जाने का उनका मन नहीं था। उससे भी बढ़कर उनकी दूसरी बेटी वाणी ज्यादातर वहीं कालेज में पढ़ी थी इसलिए बेंगलूर छोड़ने की उसकी भी इच्छा न थी। नागेशराय को बेंगलूर की हवा माफिक न आने पर भी दूसरों के कारण उन्हें वहाँ रहना पड़ता था। बेंगलूर में घर बनाते समय तुमकूर का पूर्वजों वाला घर बेंच दिया था। शारदा का विवाह भी बेंगलूर में हुआ था। कृष्ण के लिए भी रिस्ते आ रहे थे पर नागेशराय का विचार था कि बी० एस० सी० पास करके एम० एस० सी० करने वाली वाणी का विवाह पहले हो जाये।

शारदा के बाद वे अरविंद को वाणी देने का प्रस्ताव कर रहे थे। अरविंद के पिता का भी कोई विरोध नहीं था पर अरविंद वह बात उठने ही नहीं देता था। दूसरे विवाह की बात से ही वह चिढ़ जाता था।

चिक्कमगलूर जाने से पहले जब वह बेंगलूर में ही था तब नागेशराय और उनसे भी बढ़कर पार्वती ने कई बार सीधे उसके साथ यह बात चलाई थी। अरविंद नहीं मानता था। 'यह बात न उठाइए' कह देता। वाणी की ओर तों उसका ध्यान ही नहीं था। वह दूसरी शादी नहीं चाहता था अंत में एक बार साफ साफ कह दिया था। यदि आपने दूसरी शादी की बात उठाई तो मैं तबसे आप लोगों के यहाँ आना ही बन्द कर दूँगा उन्होंने सीधी बात करना ही बंद कर दिया था पर पार्वती निराश नहीं हुई थी।

नागेशराय भी चुप थे। उनमें पत्नी से अधिक संयम न होने के कारण उन्होंने कहा। 'उसका मन कुछ और ही तरह का है। यह स्वाभाविक भी है। कुछ समय बीतने पर यदि वह शादी करना चाहता है तो हमें पता नहीं चलेगा ? वाणी को उसने क्या उसने देखा नहीं ? उसकी पढ़ाई भी अभी खत्म नहीं हुई है। तब तक वह भी अपना दर्द भूल जाएगा'

पुराने संबंधकों बनाये रखने और वाणी के द्वारा उस संबंध को और भी पक्का करने के विचार से और साथ ही अरविंद जैसा वर मिलना कोई आसान काम नहीं सोचकर पार्वती जब भी गांधी बाजार जाती तब अरविंद के घर अवश्य जाती। श्रीपति की पत्नी के साथ एक आध घंटा बातचीत करके चली आती। नौकरी पर रहते समय नागेशराय ज्यादा आ जा नहीं सकते थे। परन्तु नौकरी से अवकाश प्राप्त करने के पश्चात् हाल के चार महीनों में इतवार के दिन सायंकाल को वे बिना नागा वहां जाते थे। दोनों निवृत्त अधिकारी होने से निश्चित होकर गप्पें मारने के लिए विषयों की कमी न रहती। यदि एक कर की वसूली का अनुभव सुनाता तो दूसरा न्यायालय में विचारार्थ आये अनेक मजेदार प्रसंगों का वर्णन करता।

चिक्कमगलूर में बदली होकर जाने के दो दिन पूर्व जब अरविंद उनसे मिलने गया तो पार्वती ने फिर सीधी बात उठाई। नागेशराय भी बोले,

'देखो रवि' वे प्यार से उसके पिता और भाई के समान उसे रवि ही पुकारते थे' यदि मैं कुछ कहूँ तो, तुम फिर वही बात उठी कहकर बोर हो जाओगे और पूछोगे और कोई बात नहीं है ? पर तुम्हारा कष्ट देखा नहीं जाता। तुम्हारा दुख समझ में आता है। जानता हूँ कि उसे भूलना कठिन है। क्या हमें दुख नहीं होता ? क्या हमें भी वह बार बार याद नहीं आती ? पर किया क्या जाये ? जो अनहोनी थी सो हो गयी। उसी को पकड़कर बैठे रहे तो क्या होगा? यह नहीं समझना कि मैं यह सब कुछ वाणी के लिए कह रहा हूँ। उसके लिए क्या एक लड़का नहीं मिलेगा ? तुम उसे जानते हो। एक दूसरे को समझते हो। सब लोगों की दृष्टि में ठीक होने के कारण ही मैं कह रहा हूँ। अब तक तो घर में रहे। पर अब अकेले रहने में कष्ट महसूस होगा।' यह उन्होंने बड़े प्यार और सहृदयता से कहा। अरविंद ने एक बात का भी उत्तर नहीं दिया। यह सब कुछ सुनता रहा। यही उनके लिए तसल्ली की बात थी और आशा का कारण भी था।

शारदा और वाणी में साढ़े सात वर्ष का अन्तर होने पर भी वेशभूषा स्वभाव और चालचलन में वाणी एकदम अलग थी। शारदा का स्वभाव शान्त और गम्भीर था। वाणी सजधज की ओर ज्यादा ध्यान देती थी। छोटी होने से वाणी मां को बहुत लाडली थी। उसके स्वभाव में भी शारदा से अन्तर था। शारदा को वेशभूषा में विशेष रुचि न रही हो यह बात नहीं पर उसमें जो सफाई, औचित्य और सीमा थी वह वाणी में न थी। माता पिता जोर देकर मना करने तक वह स्कर्ट ब्लाउज ही पहना करती थी। एक दिन नागेशराय राय ने सीधा कहा-आगे से यदि साड़ी नहीं पहनोगी तो कालेज जाने की जरुरत नहीं। गत चार वर्षों से वह साड़ी पहन रही थी फिर भी सैकड़ों आधुनिक आविष्कार उसमें दिखाई दे रहे थे। प्यार में पली थी। बिना किसी रोक टोक कालेज जाने से अपने शौक को उसने और बढ़ा लिया था। अपनी पाठ्य पुस्तकों को पढ़ने में भले ही चूक जाये पर फिल्म फेयर, फेमिना, ईव्स वीकली, स्टार एंड स्टाइल, बिना नागा आदि से अंत तक पढ़ जाती है।

एक बार जब अरविंद शिवभोगा आया ही था तब जोगफाल देखने के

लिए शारदा ने वाणी को भी बुला लिया था। कृष्ण भी आया था। मजाक करने के लिए अरविंद ने वाणी से पूछा था :

'वाणी औरतें साड़ी क्यों पहनती हैं ?

वाणी ने कहा था, 'सुन्दर दिखने के लिए।' 'यह बात है ? मुझे मालूम नहीं था। मैंने गलत समझा था कि साड़ी शरीर ढांपने के लिए पहनी जाती है। अब पता चला।'

'शरीर ढांपना ही यदि मुख्य उद्देश्य हो तो टाट को गले से नीचे तक लटका सकते हैं। वह क्या कम है ? दीदी से भी ऐसे कराइए। ' कहकर वह हँस पड़ी थी।

'मैंने यह नहीं कहा कि कपड़े अच्छे नहीं होने चाहिए।'

'कौनसी चीज अच्छी है ? यदि यह कल्पना भी आपको न हो तो क्या किया जाये ?'

'जाने दो, मुझे मालूम नहीं जरा बताना; तुम्हारी बहन भी तो सीखले।'

'वह सब उसे पसन्द नहीं।'

'कोशिश तो करो। नयी ढंग से साड़ी कैसे पहनी जाती है, वह सब सिखा दो।'

'आपको इससे क्या मतलब ? मैं जानती हूँ आपका मजाक।'

'मजाक नहीं मैं जानना चाहता हूँ।'

'आज के फैशन का मतलब है। शरीर ढका रहे पर छिपे नहीं।'

'कवरिंग विद आउट कन्सीलिंग कहते हुए वाणी हँस पड़ी।'

'ओ हो। खूब कहा। पर मुझे एक संदेह है। अगर तुम्हारा कहना यह कि छिपे नहीं तो ढका कैसे रहेगा ?'

'यही तो मजे की बात है ?'

'मेरी समझ में नहीं आता। यदि कन्सीलिंग की जरुरत नहीं तो कवरिंग को पूरी तरह से हटा देना ही ठीक नहीं ?'

'थू। कैसी बात कहते हैं आप।'

'कैसी बात है सुना है इंगलैंड और बहुत सी जगहों में ऐसा ही करते हैं 'टॉपलेस' आ चुका है।'

'यह तो अति हो गयी।'

'इतना तो मानती हो न ? यही खुशनसीबी है।'

'तो क्या आपने यह समझा है कि मैं बहुत फैशनेबल हूँ।'

'और नहीं तो क्या ?'

'बस तो फिर। अगर आप मुझे ही ऐसा कहते हैं तो एक दिन मेरे कालेज आइए। तो देखिए लोग कहाँ तक पहुँच गये हैं। साड़ी पहनने वाली ही बहुत कम है। स्कर्ट ब्लाउज या सलवार कमीज।'

'लगता है तुम्हें भी वह पसन्द है।'

'मैं भी एक सलवार कमीज लायी हूँ। पर वहाँ तो पिता जी गुस्सा करते हैं।'

'तो यहाँ पहनोगी क्या ?'

'तो न पहनूँ ?'

"यहाँ मत पहनना बाबा। नहीं तो लोग यह कहने लगेगें कि सब डिवीजनल अफसर के घर में एक पंजाबी लड़की आयी है तो क्या बनेगा ?"

'बस। बस। आपकी बात मानकर तो सर्दी की मौसम की तरह बारहों महीने कपड़े लपेटे रहना पड़ेगा। मुझसे यह नहीं होगा।'

अरबिंद और शारदा ने चाहे जितना मजाक क्यों उड़ाया वह अपनी जिद से बाज नहीं आयी। सलवार कमीज पहन कर ही जोगफॉल गयी।

: ३६ :

बागूर कैंप से लौटे पन्द्रह दिन से ऊपर हो चुके थे। रोज के काम में लगे रहने पर भी अरविंद की आखों में वहाँ के अनुभव बार-बार घूम जाते। गीत सुनने के अगले दिन रात को जो विचित्र से स्वप्न देखे थे उनमें शारदा का चंपकमाला का ही शारदा बनकर उसके पास आकर बैठना, बातें करना, 'मैं कहीं नहीं गयी यहीं हूँ' कहना, बार-बार याद आने के साथ उस दिन पटवारी जी के घर सुबह उनकी लड़की का काफी ले आना और दरवाजे पर खड़े होना आदि सभी कुछ उसके नेत्रों के सामने चित्रों की भाँति घूम जाता। उस लड़की का नाम तक उसे याद न था। लेकिन उसका चित्र इसके मन पर स्पष्ट अंकित था। इतना ही नहीं एक बार शारदा को भूलाता सा लगता। उसे याद करके वह सोचता या क्या ऐसा क्यों हो रहा है? अपने आप ही प्रश्न करके मन का विश्लेषण करता। वह सोचता' क्या इसी को पहली नजर का प्यार कहते हैं? पर उसके लिए इसके मन में कोई प्रेम भावना न थी। यहाँ तक कि सामान्य आकर्षक भी न था। इसे बारे में इसे कोई संदेह न था। यदि यह उसके आकर्षित होता और आशक्ति या अनुशक्ति पैदा होती तो वह असामान्य बात होती। यदि इसके मन में ऐसी कोई बात होती तो उसे प्राप्त करना भी इसके लिए कोई बड़ी बात न थी। खाली वेंकटरामय्या को एक संकेत भर करना ही पर्याप्त था। पर उसके प्रति कोई आसंक्ति न थी। अनुरक्ति का तो सवाल ही नहीं उठता था। पर इसे यह विचित्र लगता उसका चित्र बार-बार सम्मुख आ खड़ा होता। इस बारे में उसे मन को कोई तर्क देकर तसल्ली

कर लेना भी न सूझता था। उसे इन १५ दिनों में भी उसे दुबारा देखने की इच्छा भीं नहीं हुई। पर उसे भूल भी नहीं पाया था। और भूलने का कोई रास्ता भी नहीं था।

आफिस में कुछ खास काम न था जो था उसे निवटा चुका था। बागूर के अपने अनुभवों की वैठा जुगाली कर रहा था। दोपहर की डाक में वेंग-लूर से उसके बड़े भाई श्रीपति का पत्र आया। उसमें लिखा था पिताजी की तबियत ठीक नहीं। एक दिन को आ जाओ। आगे लिखा था घवराने की कोई बात नहीं पिताजी तुम्हें वहुत याद करते हैं। इसलिए एक दिन को आकार मिल जाओं। पिछले तीन चार साल से पिताजी को सर्दियों में दमें की शिकायत हो जाती थी। इसके अलावा उसे वेंगलूर गये दो महीने से ऊपर हो गये थे। यह सोच भी रहा था कि एक दो दिन को चला क्यों न जाय? इसी वीच श्रीपति का पत्र भी आ पहुँचा। सोमवार को छुट्टी भी थी। यह सब हिसाव लगाकर शनिवार शाम को आ रहा हूँ लिख दिया सोचा दो दिन दोस्तों में गुजार आऊँगा साथ ही नागेशराय के घर भी हो आऊँगा। नागेशराय की याद आने पर वाणी की याद का न आना संभव न था। वी-एस० सी० खत्म करके पता नहीं आजकल वह क्या कर रही है। यह नागेशराय अकसर पत्र लिखा करते थे। पर पिछले चार महीनों सें उनका कोई पत्र नहीं आया था। जो भी हो अव तो रिश्ता ही खतम हो चुका है। सोचकर चुप रह गया।

: ३७ :

शनिवार दोपहर को दो बजे आफिस का काम निबटाकर अपनी कार से अरविंद चल पड़ा। उसके बेंगलूर पहुँचने तक शाम के सात बज चुके थे। तुमकूर में ही अंधेरा हो चुका था। उसे लगा इतनी दूर कार चलना और बेंगलूर पहुँचकर बसवन-गुडी तक पहुँचना दोनों बराबर हैं। उसे ऐसा महसूस हुआ कि बेंगलूर में किसी वाहन चालक को ट्रैफिक के नियम पालन करने की जरूरत नहीं घर पहुँचते-पहुँचते वह थक चुका था।

साधारणतया शाम को घूमने जाने वाला श्रीपति घर पर ही था। घर पहुँचते ही अरविंद ने उससे पूछा 'बाबूजी कैसे हैं?' श्रीपति बोला, 'कोई खास बात नहीं ठीक-ठीक है। मेरे पत्र लिखने से एक दिन पूर्व दो तीन घंटे की तबियत बहुत खराब हो गयी थी।' अरविंद सीधा पिता के कमरे में गया। वे नागेशराय से बातें कर रहे थे। अरविंद उन्हें नमस्कार करके पिता के पास जा खड़ा हुआ। पिता के मुख पर थकान स्पष्ट झलक रही थी। वे बोले, 'आओ रवि, अभी आये क्या?'

'क्या तबियत बहुत खराब हो गयी?'

'ऐसा कोई बात नहीं। सर्दी में एकाध बार हो ही जाती है। इस बार लगता है कि सर्दी जरा ज्यादा है। परसों रातको तकलीफ जरा ज्यादा हुई अब ठीक है। श्रीपति को मैंने ही लिखने को कहा कि अगर हो सके तो तुम एक दो दिन को आ जाओ।'

'मैं भी आने को सोच रहा था।'

'अच्छा हुआ। दो महीने हो गये थे, तुम्हें आये।'

'जी हाँ करीब करीब तीन महीने। आने का तो बहुत मन था पर आ नहीं सका। अब आप कैसे हैं ?' कहता हुआ नागेशराय की ओ मुड़ा।

ठीक ही है। अब और क्या काम रहता है? खाना, पढ़ना और अगर पढ़ा न जाय तो घूमते घामते आकर इन्हें बोर करना।' वे हँसते हुए बोले—

'बोर करना भली कहीं ? मुझसे ज्यादा बाहर निकला नहीं जाता। आप आते हैं तो समय तो कट जाता है।'

'अब तो आप रिटायर हो गये न ?' अरविंद ने पूछा ?

'अब तो तीन महीने हो चले हैं। पिछली बार जब तुम आये थे तभी से।'

'तब तो आप शायद छुट्टी पर थे ?'

'नहीं अगस्त में ही छुट्टी खतम हो गयी थी।

'अच्छा। अम्मा जी कैसी हैं ?'

'वह भी साथ-साथ आयी हुयी हैं। तुम शायद अन्दर नहीं गये ?'

'वे भी आयी हैं ? मिलकर आता हूँ।'

कहकर अरविंद घर के भीतर गया। 'क्यों भाभी काफी नहीं मिलेगी क्या ? कहता हुआ जब वह रसोई के पास पहुँचा तो दरवाजे में पार्वतम्मा दिखाई दी।'

'नमस्कार अम्मा जी आप कैसी हैं ?'

'अरे। यह क्या ? कैसी लग रही हूँ ?'

'वाणी कहाँ हैं ? वह नहीं आयी ?'

प्रश्न स्वाभाविक होने पर भी पार्वतम्मा ने उससे अपना मन चाहा अर्थ ही लगाया। इससे जरा लड़की की तरफ से नाखुश होकर बोली।'

'उसकी सहेलियाँ आयी थीं उनके साथ चली गयी।'

'कहाँ ? सिनेमा गयी होगी ?'

'इन्होंने परसों बताया था कि तुम आज आने वालें हो इसलिए हम आ गये।'

'बहुत अच्छा हुआ मेरा वहाँ तक जाना बच गया।'

'यह अच्छी सुनायी। घर तक आये बिना ही वापस चले जाओगे? अब हम नये घर में आ गये हैं। घर नहीं देखोगे?'

'अच्छा। आऊँगा।'

'कब? कल शाम को आओगे?'

'अभी परसों तक रहूँगा। एक बार जरुर आऊँगा।'

'अगले दस मिनट में वे दोनों चले गये। उनके बार-बार आते रहने का अभिप्राय सब समझते थे। श्रीपति उसके विरोध में न थे। सभी की इच्छा थी कि अरविंद फिर से शादी करके घर बसा ले। जो कुछ कहना था सीधा किसी मौके सब कह चुके थे। अन्तिम निर्णय तो अरविंद को ही लेना था पर वह तो दूसरी शादी के बारे में सोचता ही न था।

रात को बहुत देर तक अरविंद और श्रीपति बातें करते रहें। 'बाबूजी बहुत कमजोर हो गये। क्या आजकल बाहर जाते ही नहीं।'

'जाते तो हैं। पर अब आठ दस दिन से नहीं जा पा रहे।'

'डाक्टर क्या कहते हैं?'

'उनका कहना है और कोई तकलीफ नहीं। लेकिन इस बार का अटैक बड़ें जोर का था। डाक्टर हमारा परिचित है। दो तीन बार आकर देख गया है जो भी हो उस रात काफी तकलीफ हो गयी थी।

'मुझे एक तार नहीं दे देना था?'

'यहाँ आकर क्या करते? डाक्टर से मैंने पूछा भी था वे हँसने लगे। और कहने लगे इतनी घबराने की क्या बात है? ऐसा क्या हो गया? मैं तो घबरा ही गया था।'

श्रीपति तनिक से में ही घबरा जाने वाला आदमी था। यह अरविंद अच्छी तरह जानता था। उसे डाक्टर की बात सही लगी। एक दो मिनट के बाद उसने पूछा—

'इन लोगों का आजकल आना-जाना बढ़ गया है।'

'ऐसी कोई बात नहीं। कभी-कभी चले आते हैं। नागेशराव के रोज शाम को आने से बाबू जी को बड़ी तसल्ली रही।'

'भाभी को इतना सब निभाने में बड़ी तकलीफ हुई होगी?'

'जब ऐसी बात हो जाती है तो काम तो बढ़ ही जाता है। उसमें क्या किया जा सकता है?'

ऊपर के काम के लिए एक नौकर क्यों नहीं रख लेते? मैंने पिछली बार भी भाभी को कहा था। अभी तक भी क्यों नहीं रखा।'

'आजकल ईमानदार आदमी कहाँ मिलते हैं। उसने कई लोगों से कह रखा है।'

'आजकल भी एक काम करने वाला तो है न? उसे ही पूरे समय को रख लेना था।'

'यह तो मैंने पूछा ही नहीं?'

'ऐसा करने से काम चलता है? उनको थोड़ा आराम नहीं चाहिए? बेआरामी से वे भी बीमार पड़ गयी तो?'

अरविंद को भाभी से सदा से सहानुभूति थी। वह जब बेंगलूर में था तब वह उसका कितना ख्याल रखती थी। माँ की जगह लेनेवाली भाभी को वह माँ ही मानता था। इस मौके का फायदा उठाकर श्रीपति बोला:

'तुम भी किसी की बात मानते हो?'

'शादी के बारे में?'

'हाँ।'

'अरविंद एक मिनट को चुप हो गया। श्रीपति की अकलमन्दी पर उसे बहुत विश्वास था। इसीलिए उसकी बात पर जरा सोचना पड़ता था। अंत में बोला:

'आप भी कहते हैं कि कर लूँ।'

'इसमें क्या दिक्कत है?'

'मन नहीं मानता।'

'कितने दिन तक ऐसे रहोगे, रवि। आखिर तक क्या ऐसे ही रह सकोगे ?'

'क्यों नहीं रह सकता ?'

'यह दूसरी बात है। रह सकना आसान है क्या ?'

'तो आप का कहना है कि ऐसा नहीं हो सकता।'

'मुझे तो ऐसा ही लगता है। देखो रवि, मैं समझ सकता हूँ कि भूलाना मुश्किल है। पर उसे न भूलने का प्रयास मेरी समझ में नहीं आता। तुम्हें एक दो बार लिखने की कोशिश की पर लिखकर फाड़ दिया। सभी बातें लिखना मुश्किल है। सोचो जब आओगे तब बात करूँगा। तुम इतना ही कहो कि उस बारे में सोचूँगा तो मैं समझूँगा बहुत है। तुम्हारे इतना कहने से इसे बाबू जी को कितनी तसल्ली होगी मैं जानता हूँ।'

'एक दो मिनट सोचकर अरविंद बोला,-'इनकी भागदौड़ भी इसी बात को लेकर होगी एक बार पहले भी नागेशराय ने मेरे सामने सीधा प्रस्ताव रखा था। उनकी इच्छा तो स्पष्ट है। आपका क्या कहना है ?'

यह सब तुम्हारे ऊपर है। मैं इसमें क्या कहूँ ?'

परिचित है, भले है, इसके अतिरिक्त कोई भी बात मुझे पसन्द नहीं। वाणी ऐसी है कि उसे शारदा की बहिन कहना ही मुश्किल है। इतना फर्क है। हर बात को वह मजाक में ही लेती है। मैंने बहुत बार यह बात देखा है। मुझे इतना चंचल स्वभाव किसी काम का नहीं। वह सदा से ऐसी ही है। मां का लाडप्यार जरा ज्यादा है।'

श्रीपति कुछ न बोला। उसने महसूस किया कि उसकी बात का कुछ असर हुआ है। इससे अधिक की आशा उसे थी भी नहीं। इसी तसल्ली से वह सो गया। अरविंद का मन अनेक विचारों की उलझन में फंस गया। एक और शारदा की याद थी दूसरी ओर सरस स्नेह लुटाने वाले सास ससुर शारदा जैसी बेटी देने के कारण उनके प्रति उनके मन में एक कृतज्ञता का भाव भी था। उसी की भांति वे भी दुखी हैं। जो भी हो जन्म देने वाले मां

बाप हैं। वाणी का स्वभाव न जंचने पर भी वह खराब लड़की नहीं लगी। अगर उसे वह पंसंद कर ले तो उसके मां बाप का दुख कुछ कम ही होगा। इस प्रकार के अनेकों विचार उसे घेर रहे।

शाम को जब से वह पिता से मिला था तबसे एक और विचार चक्कर काट रहा था। उसे भाई और भाभी द्वारा पिता जी की देखभाल करने में कोई संदेह तो न था। फिर यह भी एक वेटा है न। क्या उनकी देखभाल करना और उन्हें सुख सुविधा देना इसका कर्त्तव्य नहीं। श्रीपति की भाँति यदि इसका भी घर हो तो पिताका मन ऊबने पर एक जगह से दूसरी जगह जा सकते हैं। यह भी विचार उठा कि विवाह केवल एक या दो व्यक्तियों से ही संबंधित नहीं होता है; आपतु घर में रहने वाले सभी से उसका संबंध सूक्ष्मरूप से जुड़ा रहता है। अब जैसा है वैसा ही रहे तो श्रम से उसे बड़ा करके शिक्षित करके इस स्थिति तक पहुंचाने वाले पिता को क्या लाभ हुआ ? उसी समय किसी निर्णय पर पहुंच जाना संभव न था। उसने सोचा कि अभी सोचने के लिए कई बातें हैं। उतना करना है और बाद में एक निर्णय पर पहुंचना है। श्रीपति की बातों और उसमें छिपे प्रेम ने उसके हृदय को हिला दिया था।

: ३८ :

अपने वचन के अनुसार अरविंद जब जयनगर, नागेशराय के घर पहुंचा तो तब शाम के पांच बज चुके थे। सास और ससुर उसकी प्रतीक्षा कर ही रहे थे। उसका आदर से स्वागत करके उन्होंने उसे नये घर को अच्छी तरह दिखाया। उन्होंने बड़ा सा घर बनाया था। बीच में एक

वड़ा हाल था, वाहर वरामदा भी काफी वड़ा था, दायीं ओर तीन चार

कमरे थे। रसोई घर भी सुव्यस्थित था। सभी दृष्टियों से मकान सुविधा-जनक था। नये दृष्टिकोण और नई व्यवस्थाओं के साथ-साथ पुरानी विशालता और सुविधाएँ भी थी। अरविंद वोला, 'घर बहुत अच्छा है।' तव राय साहब वोले, 'हर कोई अपनी-अपनी वात कह रहा है। पैंतीस खर्च करना चाहता था पचपन लग गये। जो भी पैसा आया था सारा इसी में लगा दिया।' अपना वड़प्पन दिखाने का उनका स्वभाव नहीं था। यदि उनकी मर्जी होती तो इतना आडम्वर नहीं करते। हाल कमरे और वाहर के वरामदा को देखते समय अरविंद कुछ ढूंढ रहा था। जो कुछ वह ढूंढ रहा था वह न दिखने पर उसने सीधा ही पूछा :

'पहले वाले घर में वीच के कमरे में टंगा शारदा का चित्र यहाँ कहीं दिखाई नहीं देता।

प्रश्न अनपेक्षित था। नये घर में सामान पहुँचाते समय उसका शीशा टूट गया था । इसीलिए उसे भीतर कमरे में एक कोने में रख दिया गया था। उस पर शीशा लगवा कर उसे ठीक जगह पर टंगवा देना चाहिए, किसीको यह ध्यान नहीं आया था। परन्तु उसे व्यक्त न करते हुए पार्वतम्मा बोली :

'परसों उसका शीशा टूट गया। लगवाना है। कृष्ण को समय ही नहीं मिलता। जो करना है इन्हीं को करना पड़ता है।'

उन्होंने और भी लंबा चौड़ा विवरण दिया। अरविंद को तसल्ली नहीं हुई। कुछ असन्तोष भी हुआ। जरा विचित्र भी लगा। उसने कहा—

'मैंने उसकी एक प्रति तैयार कराकर देने के लिए कहा था।'

'हाँ', भूल ही गया। जब तुम दुवारा आओगे तव तक तैयार कर रखूँगा।'

वही मुझे दे दीजिए। मैं ही उसे ठीक करा लूँगा।'

'हमें नहीं चाहिए ?'

'मैंने आप के लिए एक काफी बनवा देता हूँ। वह कौन सा बड़ा काम है? कैंट में मेरा एक परिचित फोटोग्राफर है। कल ही बनवा देता हूँ।'

उन दोनों को यह बताने की जरुरत नहीं थी कि शारदा के चित्र को नये घर में उचित स्थान न मिलने से अरविंद को असंतोष हुआ है। यह एक भूल हो चुकी थी। ऐसी परिस्थिति के कारण उनको बड़ी निराशा हुयी। पर अब कुछ भी किया नहीं जा सकता था। अरविंद को यह सोच कर असंतोष हुआ था कि इतनी जल्दी उन दोनों के मन से शारदा उतर गयी है।

हाल में आकर बैठने पर अरविंद को समझ में नहीं आ रहा था कि क्या बात करे। नागेशराय का भी मुँह उतर गया था। वातावरण ही कुछ अजीब हो गया था। उसे बदलने के लिए नागेशराय ने पत्नी से पूछा-

'वाणी अभी नहीं आयी? कहाँ गयी?

'उसकी क्लास के तीन चार लोग आये थे। उसके साथ गाँधी बाजार गई है।

'उसे जाकर काफी समय हो गया। रवि का आना उसे मालूम न था?'

'मालूम क्यों न था जाने को मना भी किया। पर वह सुनती है क्या? अभी आयी कहकर चली ही गयी। आती ही होगी।'

अरविंद ने पूछा, 'अब एम० एस० सी० कर रही है न?'

'हाँ, मैंने ही कहा, घर में बैठे रहने की अपेक्षा पढ़ना ही अच्छा है। देखते हैं क्या करती है? मुझे तो नहीं लगता है कि पढ़ाई में आशक्ति है। बड़बड़ा रही थीं कि नया प्रोफेसर प्रयोगशाला में बहुत कुछ कराता है।'

'उसका विषय सस्यशास्त्र है न?'

'सस्यशास्त्र की कोई ब्रांच है। पता नहीं क्या-क्या बताती है। मेरे तो पल्ले कुछ नहीं पड़ता है।'

पार्वतम्मा ने खाने की चीजें लाकर रखी। काफी भी आई। नाश्ता

खतम होने पर भी वाणी नहीं आई। अरविंद के चिक्कमगलूर के काम,

वहाँ रहने प्रबंध आदि के बारे में दोनों बातें करते रहे। छः बजने को हुए वाणी के न आने से पार्वतम्मा छटपटा रही थी। नागेशराय बोल रहे थे :

'बेंगलूर में रहते रहते मैं तो बोर हो गया। सोच रहा हूँ बाहर कहीं घूम आने से जरा चेंज हो जायेगा। पर घर पर कोई न कोई धंधा लगा रहता है। निकलना ही मुश्किल है।'

'अगर ऐसे सोचते रहेंगे तो निकला ही नहीं जाएगा। निश्चय करके निकल जाना चाहिए। अब सरकारी बंधन भी तो नहीं है।'

'वह तो नहीं पर घर का बंधन अभी खतम नहीं हुआ है।' कहते हुए वे हँस पड़े।

'उसे तो खतम किया जा सकता है। कोई मुश्किल काम नहीं है। कृष्ण की शादी करा दीजिए।'

'ठीक है। पर वाणी की पहले हो जानी चाहिए।'

'वह भी हो जाएगी। उसके लिए एक बार मिलना कौन सी बड़ी बात है?'

'वह इतना आसान नहीं है जितना जबान से कहा जाता है, रवि?'

'आसान समझें तो आसान है मुश्किल समझें तो मुश्किल होता है। यदि यद आग्रह रहे कि ऐसा ही होना चाहिए तो मुश्किल दिखता है।'

'पता नहीं भाई तीस साल तक आँखे बंधे घोड़े की तरह एक ही रास्ते पर चलता रहा। अब ऐसा लगता है मानो एकदम आँखें खुल गई हों।'

'ऐसा कोई बात नहीं। जरा घूम आइए। सब ठीक हो जाएगा।'

'मैं भी ऐसा सोच रहा हूँ। अगले महीने उडपि, धर्मस्थल, काल्लूर जाने के बारे में सोच रहा हूं। लौटते समय हासन में भी एक दो सप्ताह रुकना पड़ेगा।'

'हासन में कौन है?'

'इसकी छोटी बहिन सुनंदा नहीं है वही'

'पता नहीं मुझे इतना सब याद नहीं है। बहुत पहले कभी एक बार देखा होगा।'

उसका पति श्रीनिवासराय अब हेडमास्टर है।

'ओह हो। उनकी बात कह रहे हैं ? वे चित्रदुर्ग में न थे ?'

'पहले थे; अब हासनमें बदली हुए चार वर्ष से ज्यादा हो गये। वे बुला ही रहे हैं। एक बार भी गये नहीं उनका कल ही पत्र आया है उन्होंने लिखा है अब तो रिटायर हो गये हैं अब तो आ सकते हैं। कृष्ण को छुट्टी मिलना मुश्किल है। वाणी को भी क्रिसमस की छुट्टियाँ नहीं है। उनकी मर्जी वे जैसा चाहे कर लें। हम ही चलें, कहे तो यह तैयार नहीं होती है ? क्या बताउँ, मुसीबत है"—

'यह सब सोचकर बैठे रहे तो।'

'इसलिए इस बार कुछ भी हो जाये, कम से कम पंद्रह दिन के लिए जाने का निश्चय कर लिया है।'

'सवा छः बज गये थे। वाणी नहीं आई। अरविंद यह सोचकर जाने के लिए तैयार हुआ कि वह आ जाती तो उससे एक दो बातें करके जा सकता था। उस चित्र के बारे में उसने फिर से याद दिलाई। उनका उसे देने का मन न था। कहीं रखा है कहकर झूठा बहाना करना भी संभव नहीं था। राय साहब ने दो बार कहा भी ?' 'दुबारा आने तक बनवा कर रखूँगा।' पर अरविंद ने जरा जिद से ही कहा।' यह कौन सा बड़ा काम है ? मैं कल ही बना दूँगा ? बेमन से उन्होंने वह चित्र लाकर दिया 'मेरा यहाँ तक आना इसी के लिए था। कहकर वह उनका मन दुखाना उचित नहीं सोचकर अगली सीट पर उस चित्र को रखकर उसने कार स्टार्ट की।' अब चलता हूँ। नमस्कार। कहकर वह चल पड़ा। वाणी अब भी नहीं आई। उसके माँ-बाप की निराशा क्रोध में बदल रही थी। पर वे क्या कर सकते थे।

कार घर की ओर दौड़ रही थी पर अरविंद का मन और कहीं था। मुँह नीचा करके पास ही रखे शारदाके चित्र को देखकर उसे और उस चित्र के बारे में न सोचना असाध्य था। उसी कार में उसी जगह पर शारदा पता नहीं कितनी बार बैठी थी। अब वह नहीं रही उसकी जगह उसका चित्र रखा था। वह मुँह नीचा करके बैठा गाड़ी चला रहा था। वह चित्र बार-बार अरविंद को भासित करा रहा था कि शारदा जीवित नहीं। उसके पास शारदा के और भी चित्र थे। पर वह सबसे बड़ा चित्र था जो अंतिम बार खिचवाया था। उसे खिचवाते समय किसे पता था कि वह उसका अंतिम चित्र होगा। उसमें शारदा का सहज गांभीर्य मन का स्वाभाविक औदार्य, उसमें जीवंत सा लग रहा था। उसकी एक कॉपी उसे चाहिए यह बात उसने कई बार कही थी। आज उसको उठा ही लाया था। उसे जिद्द करके उठा लाने से उन्हें दुख हुआ होगा पर वह क्या कर सकता था। उसके पास इतने शौक से बनाये गये उस घर में इस चित्र के लिए कोई जगह न थी। उस चित्र को ऐसी उपेक्षा से रखना उसे बड़ा विचित्र लगा। उसे तनिक दुख भी हुआ था खैर। हर किसी का अपना-अपना लगाव है। यह सोचता-सोचता वह घर पहुँच गया। कार से उतरते ही उसने दूसरे की नजर पड़ने से पहले ही उस चित्र को कार के पिछले हिस्से में रख दिया। उस बारे में वह किसी से बात नहीं करना चाहता था।

: ३९ :

चिक्कमगलूर से लौटने के बाद अरविंद के तीन सप्ताह फुरसत ही नहीं मिला क्योंकि कोई न कोई काम आ पड़ता था। उसकी आदत हर एक काम की तरीके से करने की थी। इसीलिए वह दफ्तर एक घंटे पहले ही पहुँच जाता और एक घंटे लेट आता था। इसी बीच में एक खास काम से 'बाबा बुडनगिरी' जाना पड़ा। इससे पूर्व वह वहाँ दो बार हो आया था। परंतु इस समय पर्वतीय प्रदेश का रास्ता बड़ा ही सुन्दर लगा। 'कविलगुंडी' को लाँघने के बाद उस तलहटी का दृश्य कमान के सामान झुके हुए पर्वतको लाँघकर जाने के बाद उस जलधाराको देखने पर तो ऐसा लगता था कि मानो चाँदी पिघलकर बह रही हो। अरविंद अपने आप को भूल सा गया। उस यात्रा के समय उसे बागूर की याद कदम-कदम पर आ रही थी। उस वन प्रदेश के बीच, उस पर्वत श्रेणी की गोद में, उस पानी, छाया, प्रकाश की माया को देखकर उसे भय सा लगता था कि पता नहीं वहाँ कौन सी अनिर्वचनीय शक्ति छिपी है। उसे देखने और याद करने पर जो सामान्य दीखता था वह भी असमान्य सा भासित होता था। पक्के पत्तों के झड़ जाने के बाद सुनहरी कोपलें वहीं फूटती हैं। सदा बहता ानी पहाड़ को एक सौन्दर्य और मैदान को जीवन प्रदान करता है। हवा नित्य नूतन होकर बहती रहती है। प्रकाश अपनी सैकड़ों भांगिमाओं में चमकता रहता है। यह कौन सी माया या इंद्रजाल है ! इन सब में किस शक्ति का हाथ है ? आदि अबूझ ऐसे अनेक प्रश्नों का उत्तर अपने से पूछता और मूक रह जाता। बीच-बीच में मयूर नौका की याद हो आती। चंपकमाला का

चित्र आँखों के सामने आ खड़ा होता । उसी के पीछे-पीछे शारदा की याद आ जाती । उसके साथ अकारण ही पटवारी की लड़की का चित्र भी आ खड़ा होता । वह कहाँ है ? यह कौन सा लोक है ? वह जो कुछ देख रहा है वह सच है ? अथवा जीवन के परे का कोई स्वप्न है । है तो वह कौन है? यह सब क्या है ? यह सब सोचने को वह विवश हो जाता ।

: ४० :

दिसम्बर मास के बीच एक दिन शाम को जब वेंकटरामय्या ने अगले दिन की छुट्टी माँगी तो अरविंद ने मजाक में पूछा,

'क्यों, साल खत्म होने को है इसलिए कैजुवल लीव पूरा कर लेने का का इरादा है ?'

'अगर ऐसा होता तो अब तक मुझें बहुत सी छुट्टियाँ ले लेनी चाहिए थी । सारे साल में मैंने केवल दो या तीन दिन ही छुट्टी ली होंगी ।'

'मुझे मालूम है ऐसा ही कहा । अब किसलिए चाहिए ?'

'कुछ नहीं, कल से गोशलय्या आया हुआ है । और कल दोपहर को वापस जाना चाहता है । कह रहा था कि बाजार में कुछ काम है । । अगर मैं भी उसके साथ रहूँ तो उसे सुविधा होगी ।'

'कौन बागूर के पटवारी ?'

'एक क्षण भर को उसे उत्सुकता हुई । वही चित्र आँखों के सामने आ खड़ा हुआ । जब वह वहाँ गया था तब उन्होंने कितना सम्मान और सुविधा दी थी । घर पर भी बुलाया था । आत्मीयता दिखाई थी । उसके बदले में

वह क्या कर सकता है ? उसका भी कोई अपना घर होता तो घर बुला कम से कम एक कप काफी तो पिलाता। स्त्री के बिना घर घर ही नहीं रहता। वह एक धर्मशाला होता है, एक ठहरने की जगह भर और इसके अलावा और क्या हो सकता है।

'जी हाँ। सभी आयें हैं। मैं जब वहां से लौट रहा था तभी उसने कहा था कि हासन जाना है।'

'वहाँ उनका कौन है ?'

'बड़ा लड़का हाई स्कूल में अध्यापक है।'

'हाँ जब हम वहाँ गये थे तब उस दिन सुबह उन्होंने बताया था।'

वह सुबह भूलना संभव नहीं था। वह सहज भाव से पूछ बैठा—

'उनकी लड़की की शादी तय हो गई क्या ?'

'हासन में किसी लड़के को दिखाने की बात थी। इसलिए अब वहाँ जा रहे हैं।'

'बेचारे। बड़े भले आदमी है, पटवारी जी'

'ऐसे निस्पृह भाव से रहने वाले आदमी बहुत कम होते हैं।'

शाम को घर लौटने पर गोपालय्या के साथ काफी पीते हुए वेंकट-रामय्या ने पूछा।

'क्यों भाई, जाना तो कल है पर सामान आज ही बांध लिया। कल ही जाओगे क्या ?'

'हाँ भैया, अभी देर हो गयी। भैया की चिट्ठी आये काफी दिन हो गये। उसने लिखा था बच्चे ठीक नहीं हैं—'

'तुम्हारा यह आना, आना नहीं हुआ।'

'एक हफ्ता ठहर सकते थे पर --'

'तुमने कहा तो था पंद्रह दिन ठहरोगे ?'

'मैंने यह तो नहीं कहा था बल्कि तुमने ठहरने को कहा था।'

'एक हफ्ता और ठहर जाते तो अच्छा था अगले हफ्ते रामू आ रहा है।'

'कमला दुविधा में पड़ गई। मन में सोचा एक हफ्ता ठहर कर आने वाले रामू को कुमुद को दिखा कर क्यों न चला जाय। पर उधर भी मन खिंच रहा था। बेटे ने लिखा था घर में सब बुखार से पड़े हैं। वह चिट्ठी आये दो हफ्ते हो चले थे। यह सोचकर कि ज्यादा से ज्यादा एक हफ्ते की हो तो बात है पति से बोली-' भैया को एक चिट्ठी लिखकर क्या हम चार दिन बाद नहीं निकल सकते ? पर गोपालय्या मानने को तैयार न था। वह बोला,--

'यहाँ रह जाओ। आगे जाने की क्या जरुरत है ? 'तब वेंकटरामय्या बीच हीं में बोले-, तुम भी अजीब हो। एक बार निश्चय कर लिया तो हो गया बस। उसे बदलने के लिए ब्रह्मा को स्वयं ही आना पड़ेगा।'

'इस वक्त ऐसा कौन सी जरुरत आन पड़ी ?'

'मेरे यह कहने पर कि रामू आ रहा है इन्होंने ऐसा कहा।'

'जब आ जाएगा तब खबर देना। यहाँ से हासन कौन सा दूर है। तीन घंटे में आ सकते हैं। इसके लिए एक हफ्ता भर ठहरने के माने--

'तो यों क्यों नहीं कहते कि यहाँ ठहर कर तुम्हें बहुत कष्ट हुआ।' कह कर वेंकटरामय्या हँसे।

'यहाँ रहकर करना भी क्या है ?' तुम्हारे साथ तो सुबह से शाम तक दफ्तर लगा रहता है।'

'कल की छुट्टी ली है।'

'ठीक है। तुम आठ दिन की छुट्टी लो तो, मैं रह जाता हूँ।' कहकर गोपालय्या भी हँस पड़ा।

'इससे अच्छा है तुम आज ही चले जाओ महाराज, बस खुश ?'

'आज नहीं, कल। बताया था कि कल सुबह बाजार में थोड़ा काम है।'

दूसरे दिन गोपालय्या और उसके परिवार के चले जाने के बाद पद्मा वेंकटरामय्या से बोली

रामू आज कल ही में आ जाता तो अच्छा था। क्या वह एक दिन को आ नहीं सकता था ?'

'पता नहीं, क्या काम रहता है। किसे मालूम। मुझें भी ऐसा ही लगा था।' लड़की अच्छी नहीं क्या ?'

'बहुत ही अच्छी है, घर के काम काज की कहो या किसी और बात की। किसी में न जरा कम न जरा वेश। बातें करने में भी ऐसी ही है। मुझे तो बहुत पसन्द आयी। लड़की हो तो ऐसी।'

'चलो। अगले हफ्ते आ ही रहा है, देखेंगे।'

वहाँ किसी को लड़की दिखाने गये हैं न ?'

'गोपालय्या कुछ ऐसा ही कह रहा था।'

'उसे देखकर कौन पसन्द नहीं करेगा ? एकदम पसन्द कर लेंगे।'

'पर हम क्या किसी को दिखाने के लिए मना कर सकते हैं ? यह लड़का भी तो नहीं आया।'

"आपने ही उसे इतना सिर चढ़ा रखा है। सब कुछ उसकी मर्जी के मुताबिक ही होना चाहिए। अगर आप उसे आना पड़ेगा लिखते तो रुक सकता था क्या ? सब कुछ उसी पर छोड़ दोगे तो ऐसा ही होगा ?

'अब ऐसा क्या हो गया ?'

'हुआ तो कुछ नहीं। हो सकता है। ऐसी सुन्दर लड़की हाथ से निकल जाएगी और क्या होना है ?'

'अपना-अपना नसीब है। हम क्या कर सकते हैं ?'

'ऐसे ही बैठे रहिए। वह कालेज की किसी लड़की से शादी करने की कहेगा तो पता चलेगा ?

'मुझे क्या पता चलना है ? उसकी मर्जी की लड़की से तो उसे शादी करनी चाहिए न ?'

'उसके सामने यह सब मत कहना, सब ठीक हो जायेगा।'

'हम जो कहते हैं वही ठीक है, जब यह जिद् करे तो मुश्किल होती है हमारे मुताबिक ही सब कुछ हो यह आवश्यक नहीं। ऐसा हो भी नहीं सकता।'

ठीक है बस, आप, आप का बेटा और आपका तत्वज्ञान।'

वेंकटरामय्या पत्नी के असंतोष को देखकर चुप रह गये पर उन्हें भी मन ही मन यह लगा कि रामू आ जाता तो अच्छा था। गोपालय्या के जाने के अगले दिन ही रामू का पत्र आया उसने लिखा था कि उसके साथ के लड़के लड़कियों का एक दल फूल पत्ते और वनस्पति आदि इकट्ठे करने के लिए एक अध्यापक के साथ बाहर जा रहा है। उसे भी उनके साथ जाना है अतः वहाँ से लौटने के बाद यानी जनवरी से पहले हफ्ते तक घर आना संभव नहीं। पद्मा को जो निराशा हुई वहीं वेंकटरामय्या को भी हुई। पर वे यह सोचकर चुप रह गये कि संयोग ठीक नहीं बैठ रहा है।

: ४१ :

गोपालय्या कमला कुमुद के साथ हासन में जब माधव के घर पहुँचे तो शाम के साढ़े सात बज चुके थे। अंधेरा हो गया था। सड़क की बत्तियाँ टिमटिमा रही थी। अपरिचित जगह थी। उनमें केवल कुमुद ही घर पहचान सकती थी। नई कालोनी होने से सभी रास्ते एक जैसे लग रहे थे। इसके अतिरिक्त नये लोग देखकर टाँगे वाला भी दूसरे रास्ते से चल रहा था। कुमुद को लगा कि वह लंबे रास्ते पर जा रहा है। आम

रास्ते की मरम्मत हो रही है वहाँ से नहीं जाया सकता ऐसा झूठ बोल कर उसने लंबा रास्ता ही पकड़ लिया था। कुमुद और कुछ न सूझने से चुप ही रही। आखिर घर पहुँचने की तसल्ली से बाकी सब तो चुप रहे पर माधव को उस मुसलमान टाँगे वाले से झड़प करनी पड़ी। आठ आने ज्यादा लिए बिना वह वहाँ से टलता दिखाई न दिया तो अंत में माधव ने 'बिना टकरार के खाना हजम नहीं होता। तुम लोगों की तो यह आदत ही है।' कहकर बड़बड़ाते हुए आठ आना दे दिये। बड़बड़ा कर दिये तो क्या आखिर आठ आने तो ज्यादा मिले इस तसल्ली से टाँगे वाला चला गया।

भीतर आते ही गोपालय्या और कमला को सब बड़े कमजोर नजर आये। बच्चे तो बिल्कुल ही सूख गये थे। 'दादी। दादी।' कहते आगे आये बच्चो को पास खींच कर, 'हाय बच्चे कितने उतर गये। तुम दोनों भी ऐसे ही हो गये हो। कितनी तकलीफ हुई होगी तुम लोगों को कह कर कमला ने अपना सहज वात्सल्य दिखाया। बच्चों की स्थिति ने उन्हें वास्तव में दुःखी कर दिया था। माधव बोला,

'अब तो बहुत ठीक हो गये हैं। तीन चार दिन तो हालत बड़ी खराब थी। सभी पड़े हुए थे। दवा लाने वाला कोई भी न था। सुनंदा बहिन न होती तो पता नहीं क्या बनता।'

कमला ने पूछा : यह सुनंदा कौन है ? रुक्मिणी बोली सामने वाले घर में रहती हैं। इनके हेड मास्टर की घर वाली। चार दिन तक दलिया, दवा आदि सबके लिए वे ही दौड़-धूप करती रही घर वालों की तरह।'

'तुम्हारी चिट्ठी मिलते ही चलने को इनसे कहा पर तुम्हें पता है, इनका तो एक न एक खटराग लगा ही रहता है। कहाँ खटाई होनी है और भी कई काम थे। आती बार चिक्कमगलूर में दो दिन लग गये।

'चिक्कमगलूर में क्या था ?'

'कुछ नहीं।' इनके पुराने दोस्त वेंकटरामय्या कुछ दिन पहले हमारे यहाँ आये थे अपने अफसर के साथ। उन्होंने बड़े आग्रह से कहा था कि

हासन जाते हुए उनके यहां ठहर कर जायेंगे उनका बड़ा लड़का शादी लायक है। सोंचा था कि आते हुए कुमुद को दिखाते जाएंगे पर वह बेंगलूर से आया ही नहीं था। कह रहे थे अगले हफ्ते शायद आ जाय।'

माधव ने पूछा–' लड़का क्या करता है ?'

'पता नहीं, यह सब मुझे मालूम नहीं। इन्हें ही पता है। इतना कह रहे थे कि वह अभी पढ़ रहा है। लगता है कि मां बाप को तो लड़की पसंद है।

इतने में घर को आगे पीछे सब तरफ से देख कर लौटे गोपालय्या ने बेटे से पूछा।

' घर तो अच्छा है। कितना किराया है ?

'साठ रुपये।'

'महीने के साठ, इतने पैसे किराये में ही चले जांय तो काम कैसे चलेगा ?

'पिता जी यहां तो मकान का मिलना बड़ा मुश्किल है। पहले है। पहले एक और जगह पर था। वह जगह अच्छी नहीं थी और साथ में मच्छर भी बहुत थे।'

यहां तो किराये के मुताबिक ही होते होंगे" गोपालय्या हंसते हुए बोले।

माधव बोला यहाँ 'नहीं है यह तो नहीं कह सकता बहुत है। इसीलिए उठकर मैंने घर का चक्कर काटा इतना घना जंगल होने पर हमारे यहां एक मच्छर नहीं।

यहां रात को सोना ही मुश्किल होगा।

'वह नहीं चहिए बाबा। चिक्कमगलूर में बहुत मना करने पर भी वेंकटरामय्या ने लगा दी थी। मेरा तो सांस घुट सी जाती है। आखिर आधी रात में सिर बाहर निकाल कर सोया।'

भीतर कमला रुक्मिणी से कह रही थी।

पहले बच्चों को खाना खिला दो। बच्चे क्यों रास्ता देखें। संपत को

अभी से नींद आ रही है।'

'मैं तो खाना दे रही हूँ। पर वे तैयार हो तो। उनकें साथ ही चाहिए इन्हे भी।

'तो जल्दी थालियां लगा दो। खाना तैयार हो गया न ?'

'दस मिनट में हुआ जाता है। दाल जरा सी पकनी है, बस।'

'कुमुद कहां है ?'

'अरे। वह तो आते सुनंदा बहिन के घर चली गयी।'

खाने के बाद गोपालय्या और माधव बाहर के आंगन बैठे बातें कर रहे थे। गांव की बातें माधव बड़े ध्यान से सुन रहा था। अंत में गोपालय्या ने पूछा।

'तुमने किस लड़के की बात लिखी थी ?'

'वह। वह तो हमारी सुनंदा बहिन ने बताया था। उनकी बहिन का लड़का है। उन्होंने भी उसे पत्र लिखा है।'

'कहाँ रहता है ?' तुमने तो बेंगलूर लिखा था ?'

'मां बाप बेंगलूर में है बेटा भी वहां इन्जीनियर है। घर अच्छा है। पर हमें भी तो उनकी बराबरी नहीं होनी चाहिए ?'

'ऐसी कोई बात नहीं उनका कहना है कि लड़की पसंद आ जाय बस।'

'वह सब इनका कहना है। पहले सब ऐसे ही कहते हैं। खैर, तो हमें बेंगलूर जाना पड़ेगा।'

'पहले ऐसा ही सोचा था पर कल ही उन्होंने बताया है कि अगले हफ्ते वे ही यहां आ रहे हैं। यह भी अच्छा ही हुआ।'

'बाप क्या करता है ?'

'न्याय विभाग में थे। शायद जज थे। अब रिटेयर हो गये हैं।

'मुझे तो ऐसा लगता है कि यह हमारे हिस्से का कौर नहीं है। दिखाना ही बेकार है। वे क्या उम्मीद करते हैं ? यह पता लगा कर आगे बढ़ना ही ठीक है।'

'देखो, कल हेड मास्टर बहिन से बात करने से कुछ पता लग जाएगा। सुनंदा बहिन की बात से तो लगता है क्ति वे लालची नहीं है। फिर भी आपके कहने के अनुसार पता लगा लेना ही ठीक रहेगा।'

पिता जी की बातों से माधव के मन में कुछ असंमजस सा पैदा हो गया। पर कुमुद सुनंदा को बहुत पसंद थी इसलिए उसने कहा था कि आप चिट्ठी तो डाल दीजिए बाद में मैं सब संभाल लूँगी। इसी भरोसे पर ही माधव ने नागेश राव को पत्र डाल दिया था। उनसे अभी तक उत्तर नहीं आया था। कौन जाने? चाहे जो भी हो वे पैसे वाले हैं। यह सोच कर वह चुप रह गया था। ऐसी महत्वपूर्ण मामले में छोटी बहिन की बात बड़ी बहिन कितना मानेगी कहा नहीं जा सकता है।

: ४२ :

अगले दिन प्रातः जैसा की उम्मीद थी सुनन्दा कुमुद की माता से मिलने आयी। परस्पर परिचय के बाद औपचारिक बातें हुईं। उस दिन स्कूल में छुट्टी होने के कारण खाना पकाने की हड़बड़ी किसी को न थी। रुक्मिणी काम में लगी थी। दोनों बच्चे दादी को घेरे थे।

सुनन्दा बोली, 'देखिए। कैसी बात? दादी के आते ही सरसू हमारा घर भूल गयी?' सरसू ने कमला के पल्ले में शरमा कर मुँह छिपा लिया। सम्पत तो उसकी गोद में जमकर बैठा था। सुनन्दा कह रही थी

'यह दोनों हमारे यहाँ ज्यादा रहते हैं।'

'रुक्मिणी बता रही थी।'

'जब बुखार आया तब सबको बड़ी ही तकलीफ हुई।'

'सबकी देखभाल आपको ही करनी पड़ी। माधव बता रहा था।'

'दो तीन दिन का तो चारों ही विस्तर पर पड़ गये थे। हम दोनों का तभी बुखार उतरा था।'

'आपको भी बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी। दोनों तरफ की देखभाल के माने.........।'

'तकलीफ काहे की ? ऐसे मौके पर आदमी ही एक दूसरे के आये तो पड़ोस का क्या फायदा ? जब हम दोनों पड़े थे तब रुक्मिणी ने कोई कम तकलीफ नहीं उठाई ?'

'इतनेमें स्नान का काम निबटाकर आया माधव बोला, 'अंगच्ची, कुमुद के लिए जिस लड़के के बारे में मैंने लिखा था वह इन्होंने ही बताया था।'

माधव ने माँ को जिस शब्द से संबोधन किया वह सुनन्दा को विचित्र सा लगा उसने पूछा

'आप ने अपनी माँ को किस नाम से पुकारा ?'

अंगच्ची।' माधव ने हँस कर कहा।

'इसके माने क्या हुआ ?'

"प्यार से पुकारे जाने के नाम को कोई अर्थ हुआ करता है ? मेरा एक दोस्त अपनी एक बेटी को खलमण्ड पुकारता है। दूसरी को चिंगू इन नामों का अर्थ ढूढ़ने की जरुरत नहीं। मुझे भी पता नहीं मैंने ऐसे क्यों पुकारना शुरु किया।"

इस पर कमला बोली,

'जब यह छोटा था हमारे यहाँ तब इनकी मौसी रहती थी। उनको सब गंगज्जी (गंगा नानी) बुलाते थे। इनसे जब बोलना शुरु किया तो वे चली गयी थी।

'हाँ, नाम पता नहीं कैसे-कैसे पड़ जाते हैं। मुझे हमारे घर में सब सण्णी (छोटी) पुकारते हैं। पर आप का यह नाम बड़ा अजीब लगा। मेरी बड़ी बहिन के बच्चे भी अपनी माँ को इसी नाम से पुकारते थे।'

'क्या ? अंगच्ची नाम से ?'

जी हाँ ।'

'तो यह बात है । हमने जैसा सोचा था यह नाम वैसा विचित्र नहीं । दूसरे भी इस नाम का प्रयोग करते हैं । 'कहता हुआ माधव हँस पड़ा । आधे मिनट बाद उसने पूछा—

'आप की दीदी आ रही है न ?'

परसों चिट्ठी आयी थी । वे उड़पी धर्मस्थल जा रहे हैं वहाँ से लौटते हुए यहाँ से होकर जाने के लिए मैंने दीदी को लिखा है । बहुत दिन हो गये हमारे यहाँ आये । अगर वे आयें तो अगले सप्ताह आ सकते हैं ।'

'उनका लड़का भी आएगा ?'

'शायद आये । मैंने तो सब को आने के लिए लिखा है । यदि वे अपनी कार में ही आ रहे तो कृष्ण जरुर आयेगा । फिर भी वह नौकरी वाला है । छुट्टी भी तो मिलनी चाहिए । इसी बीच शायद एक चिट्ठी आ सकती है । दीदी ने लिखा है आने का दिन पक्का होते ही चिट्ठी लिखूँगी । मैंने सोचा आये तो कुमुद को भी देख लेंगे ।'

अपने संदेह को व्यक्त करने का यही मौका है सोच कर माधव ने बोला

'देखिए । सुनन्दा बहिन आपने कुमुद के बारे में बड़ी दिलचस्पी दिखाई है । आपके कहने के अनुसार मैंने भी चिट्ठी लिखी थी, पर कोई भी जवाब नहीं आया । मुझे तो संदेह है कि वे मानेगें भी या नहीं । जो भी हो उनका स्तर ऊँचा है । वह सब सोचें तो··· ···'

'यह सब आपको सोचने की जरुरत नहीं । कुमुद को देखने के बाद भी यदि वह नहीं मानता तो कहना पड़ेगा उसकी आँखें ही नहीं । कृष्ण को क्या मैं नहीं जानती ?'

'लड़का यदि मान भी गया तो बड़े लोग क्या क्या उम्मीदें रखते हैं यह किसे पता है ?' वह सब सोचता हूँ तो लगता है कि मैंने चिट्ठी लिखने में

जल्दबाजी की है। जो भी हो हम गरीब हैं आपको तो ऐसा नहीं लगता पर बाकी लोगों के हिसाब से, '

'आप चुप रहिए। यह सब मैं संभाल लूँगी। वह पहले आ तो जाय। अभी से यह सब क्यों ?'

'अगर आप इस एक काम को करा दें तो आप का बड़ा उपकार होगा हमारी यही एक चिंता है। इसकी शादी हो जाय तो हमारा सारा बोझ उतर जायेगा।'

'यह बात कह कर कमला ने अपने मन की बात साफ कह दी।

'अरे रे। मैं तो यहाँ बैठ गयी। यहाँ आने पर सदा ऐसा ही ऐसा तेजी से होता है।' कह कर सुनन्दा घर की ओर चली गई।

: ४३ :

जैसे कोई अपने दुखों का हिसाब लगाने बैठे तो उस दुखों का अंत होता ही नजर नहीं आता उसी प्रकार नागेशराय को यात्रा कार्यक्रममें कदम-कदम पर अड़चनों का सामना करना पड़ा। साल का आखिर होने से कृष्ण को हप्ते भर छुट्टी मिलती दिखाई नहीं देती थी। वाणी ने अपना दूसरा कार्यक्रम बना लिया था। वह अपने साथी विद्यार्थियों के साथ विशेष सस्य-संग्रह के लिए अपने विभाग की ओर से बाहर जाने वाली थी। उनका नीलगिरी के कुछ प्रदेशों में घूमने का निश्चय था। माता पिता-पिता इधर मना कर रहे थे। उधर उसके साथ जाने वाले अध्यापक भी साथ चलने को जोर दे रहे थे। इस कारण उसने उनके साथ जाने का निश्चय

कर लिया था। उसकी जिद् से माता-पिता को विशेषकर पिता को बड़ा असन्तोष था। इन सब कारणों से उनकी यात्रा का कार्यक्रम अनिश्चितता के झूले में झूल रहा था। एक निश्चय कर डालने के विचार से नागेशराय एक दिन बोले

'क्यों बेटा क्या बना तुम्हारी यात्रा का ? जाना जरुरी है क्या ?'

'जी हाँ पिता जी, जाना ही पड़ेगा।'

'जाने की इतनी जिद् क्यों ?' उनकी ध्वनि में असंतोष था।

'इसमें जिद् कैसी पिता जी ?' एम० एस० सी० के विद्यार्थी न जाये तो और कौन जायेगा कह कर प्रोफेसर जोर दे रहे हैं। एक पेपर की तैयारी के लिए विशेष संग्रह की दृष्टि से भी इससे लाभ होगा।'

'तुम्हारे साथ कौन जा रहा है ?

'प्रोफेसर कृष्ण स्वामी और रामचन्द्र।'

'यह रामचन्द्र कौन है ?'

हमारे यहां के रिसर्च असिस्टेंट हैं। वे पी० एच० डी० के लिए शोध कर रहें हैं।'

'परसों घर आते हुए मिला था वही है ?'

'जी हां वे ही पिता जी प्रयोगशाला में वे मेरी बहुत सहायता करते हैं। वे भी मुझे चलने के लिए कह रहे हैं।'

'पता नहीं कैसा शोध कार्य है और कैसा प्रवास ? मुझे तो सब विचित्र लगता है।'

'तभी पार्वती भीतर से आकर बोली-'इसमें बुरा मानने की क्या बात है। जब कालेज वाले चलने के लिए जोर दे तो यह क्या कर सकती है ?'

तुम दोनों की मर्जी है तो मैं अड़चन डालूँ ? जाने दो। कृष्ण को भी छुट्टी नहीं मिल रही। इसे कहीं और जाना है। तो इसका मतलब यह हुआ कि हमारा कार्यकम पूरा नहीं होगा।' जब वे यह बात कह रहे थे तब वाणी वहाँ से जा चुकी थी।

'यात्रा रद्द करने की क्या जरुरत है ? कृष्ण जैसे भी हो अकेला रह लेगा हम दोनों चले चलेंगे ?'

'तो तुम्हारा यह कहना है।'

'इसमें दिक्कत क्या है ?

'दिक्कत तो नहीं पर एक बात है। कृष्ण साथ चले तो कार में जा सकते हैं। मैं अकेला इतनी दूर गाड़ी नहीं चला सकता।'

'इसमें क्या है ? एक ड्राइवर ठीक कर लिजिए। कोई मुश्किल नहीं होगी।'

'अगर जाना ही है तो ऐसा ही करना पड़ेगा।

'अगर जाना ही है अब उसके बाद उसने बेटी से पूछा यह कहने की जरुरत नहीं।'

'तुम्हें कब जाना है बेटी ?'

'बीस तारीख सुबह को' वाणी ने भीतर से उत्तर दिया ।

ठीक है हम भी उसी दिन चलेंगे। बस एक ड्राइबर ठीक कर लिजिए।

'पर कृष्ण के बारे में तुम्हारी बहिन ने चिट्ठी लिखी थी न ? उसने एक लड़की देख रखी है। लड़की बालों की तरफ से भी एक चिट्ठी आयी है। ऐसे में अगर यही न चलें तो ?'

'पर इस सबके लिए हम क्यों कर सकते हैं ? अगर उन्हें इतनी जल्दी हो तो यहाँ आकर लड़की दिखा जाये। हमसे ज्यादा उनकी सुविधा के बारे में ही आप का ध्यान है। यह सब हमें सोचने की जरुरत नहीं। कृष्ण की शादी की अभी हमें इतनी जल्दी नहीं। पहले हमें वाणी की शादी के बारे में सोचना है।'

'पर उसके बारे में मैं और तुम सोच कर क्या करेंगे ?'

'यह क्या ? आप ऐसे बोल रहें है ?'

'हमारी कौन सी बात वह मानती है जिससे कि हम उसके लिए लड़का ढूँढ़ सकें ?'

'आप को उसकी यात्रा पर जाना जँच नहीं रहा है ?'

'जँचना वँचना क्या ? जैसा होता वैसे चलना पड़ेगा। कह कर नागेश राय चुप हो गये। अपनी यात्रा के बारे में भी अब उन्हें कोई उत्साह नहीं रहा था। पार्वती जाना चाहती थी। यात्रा के लिए यदि किसी में उत्साह था तो केवल वाणी में।

: ४४ :

अरविन्द नागेशराय के घर से जो फोटो लाया था उसे सुन्दर ढंग शीशे में मढवा कर अपने घर के हाल में बीचों-बीच दीवार पर ऐसे लगा दिया ताकि आते-जाते उस पर नजर पड़े। जब वह उनके यहाँ गया और उस फोटो को आग्रह पूर्वक माँगते समय और मढ़वाते समय से हाल में टाँगते समय तक उसे इस बात की कल्पना तक न थी कि उस चित्र का उस पर कितना प्रभाव पड़ेगा। आग्रह पूर्वक उसे ले आया था। उस फोटो को देखते ही उसे लगा था वह फोटो उसके पास होना चाहिए। इसके अलाव नागेंशराय के नये मकान में उस फोटो को उचित जगह पर नहीं लगाया थ यह देख कर उसे दुःख हुआ था और ले जाने की इच्छा हुई थीं। लाक अपने घर में लगाने के बाद उसे आशा से अधिक तसल्ली हुई थी।

जब से चिक्कमगलूर आया था तब से उसी घर में था। वह अपना काम बड़ी निष्ठा से करता था। जब काम में लगा रहता तब उसे किसी बात का ध्यान नहीं रहता था नियमित रुप से जब काम पूरा करके घर आता तो उसे घर का एकांत चुभता था। घर भाँय-भाँय करता सा

लगता था। रसोइया नारायणन काफी नाश्ता सामने रखता तो पेट की भूख तो भर जाती पर मन की भूख जैसी की तैसी बनी रहती। उसे भूलने के लिए अथवा अभ्यासवश या किसी और कारण वह शाम को घूमने निकल जाता। परन्तु उस फोटो को हाल में टांगने के बाद एकांत इतना खलता नहीं था। सोचने पर उसे यह बात तनिक विचित्र सी लगती थी। कहाँ भी कोई अन्तर न भा। वहीं घर था। वही काम था, वही रसोइयाँ था, वही प्रतिदिन का काम धंधा पर उस फोटो के आने के बाद से सब कुछ बदला बदला सा लगता था। उसे लगता कि उस घर में वह अकेला नहीं उसके साथ उसका कोई अपना भी है। यह भावना अरविन्द के मन में दिन दिन जमती जा रही थी।

'बागूर के तालाब के किनारे शारदा स्वप्न में आयी थी। और उसने कहा था 'मैं यहीं हूँ और कहीं नहीं हूँ।' इस फोटो को घर आने के बाद से यह विचार एक विश्वास में बदलता जा रहा था। कभी-कभी अपने आप ही कहता, 'यह एक भ्रम है। यह सब मेरी कल्पना है। भ्रम सही, कल्पना सही, पर इससे मेरे जीवन को यदि सहारा मिल सकता है तो इसे नुकसान क्या है?'

उस दिन दोपहर को आफिस में बेंकटरामय्या ने नये वर्ष के नये महीने के दौरे का कार्यक्रम इससे पूछा तो इसने कहा पौष मास की पूर्णिमा के दिन वह घर रहना चाहता है। उस दिन दौरे पर नहीं जा सकेगा। उसके अनुसार बाकी कार्यक्रम वे ठीक कर ले। उस दिन शारदा का वार्षिक श्राद्ध था। जब वह शहर में था तब राम पुरोहित को रुपये देकर जो-जो श्राद्ध कर्म करना चाहिए थे उनका पूर्ण रुप से करके उन्हीं के घर भोजन करके लौटता था। शुरु-शुरु में वह सोचता था कि यह सब करने की क्या जरुरत है? हमारा किया तर्पण और हमारा दिया भोजन और दक्षिणा इससे जो चला गया उसे क्या लाभ? एक बार राम पुरोहित से उसने सीधें से ही यह पूछा भी था। उत्तर में वे बोले, 'यह केवल विश्वास की बात ही

नहीं अपितु निष्ठा और प्रेम का भी प्रश्न है। एक बात है कि चला गया जीव गया नहीं, वह यहाँ है,मैं जो देता हूँ उसे वह भले ही ग्रहण न करे पर उसके लिए यह किया जा रहा और वह पास ही है, यह विश्वास मन में रहने की बात है। यह अपनी-अपनी बात है। यह विश्वास न होने पर भीं जो चला गया वह मेरा प्रिय व्यक्ति था जब जीवित था तब उसने हमारे लिए बहुत कुछ किया। उसके प्रेम कें प्रति मैं अपनी कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। उस भाव से उसे कृतज्ञता पूर्वक याद करना दूसरी बात है। चाहे जो भी माने हो इसमें प्रीति और निष्ठा ही मुख्य है। सच्चा प्रेम हो तो ऐसे प्रेम का पात्र जीव भी अवश्य ही कहीं न कहीं रहता है। पुरोहित की बातों ने इसके विचारों को बदल दिया था। इसलिए अरविन्द पौष पूर्णिमा की प्रतीक्षा कर रहा था। कार्यक्रम बना वह सदा इस बातका ध्यान रखता कि कोई भी कार्यक्रम इसमें वाधा न बने। उसने वेंकटरामय्या से उस दिन दोपहर को पुरोहित जी को सूचित करने और प्रबन्ध करने को कहा।

: ४५ :

बाकी लोगों को चाहे जैसा रहा हो पर गोपालय्या के लिए हा पन में ठहरना सिर दर्द बन गया था। वहाँ आये तीन हफ्ते बीत चुके थे। कोई काम करने को नहीं था। माधव सुबह से शाम तक अपने काम में लगा रहता था। कभी कभार शाम को पड़ोस के श्रीनिवास मिल जाते पर उनका कार्यक्षेत्र और था इसका कुछ और। गाँव में पले और अधिक पढ़े-लिखे न होने के कारण गोपालय्या को उसके साथ बैठकर बात करने

में बड़ी दिक्कत पड़ती। यह जिन विषयों पर बात कर सकता था उनके बारे में उन्हें लगाव न था। इस कारण इसका दिन कटना मुश्किल हो गया था। ज्यादा से ज्यादा दिन में एक बार बाजार जाता। वहाँ की कीमतें देखने पर उसे और भी बुरा लगता। औरतें पड़ोसियों से गप्पें मारती थीं। चार दिन पहले सुनंदा की बहन आयी थी जिससे स्त्रियों में तो खूब उत्साह रहा पर यह बैठे ऊबता रहा। गाँव में जमीन के या किसी न किसी काम-धन्धों में लगा रहता था। गोपालय्या को शहर में ऐसे निकम्मे बैठे रहना दूभर हो गया।

ऊपर से आने का प्रयोजन भी सफल होता दिखाई नहीं देता था। वेंकटरामय्या की चिट्ठी भी आयी थी। उसमें लिखा था कि उसका बेटा कहीं बाहर जा रहा था। इस कारण वह नहीं आ सकता। सुनंदा का भांजा भी छुट्टी न मिलने से माँ-बाप के साथ नहीं आया था। इसके अलावा पार्वतम्मा का रंग ढंग देखकर उसने सोच लिया था कि बेंगलूर तक जाकर लड़की दिखाने की जरूरत नहीं। वह सोच ही रहा था कि अब वापस क्यों न चला जाय ? पर कमला का कहना था, 'आ ही गये हैं अब वापस चलें तो दुबारा जाना मुश्किल होगा। और दो हफ्ते रहकर जाना ठीक होगा' और इस पर गोपालय्या बोला, 'तुम चाहो तो एक महीना और रह लो। मुझे कोई एतराज नहीं। मुझे काम ही क्या है ? मैं चलता हूँ।' अन्त में मेरे बेटे का कहना मानकर किसी प्रकार एक हफ्ता और रहनेको मान गया एक-एक दिन गिनने लगा।

अन्त में यह निश्चय हुआ कि गोपालय्या अगले हफ्ते लौट जाएगा। कमला एक महीने बाद तक रहेगी और कुमुद तो भाई के पास ही बनी रहेगी। जिस दिन गोपालय्या के जाने का दिन निश्चय हुआ। उसी दिन श्रीनिवासराय ने उसके घर आकर सबको भोजन के लिए निमंत्रित किया। पूर्णिमा पास ही थी। इसलिए यह निश्चय हुआ कि सब मिलकर चाँदनी रात में भोजन करेंगे। गोपालय्या को इसमें विशेष रुचि न थी। पर एक तरफ से कमला और दूसरी ओर सुनंदा और पार्वतम्माने पाँच छः प्रकार के भोजन बनाने की तैयारी में बड़े उत्साह से लग रही थी।

: ४६ :

उस दिन चाँदनी रात का भोजन बड़ा बढ़िया रहा। दोनों घरवालों ने तीन-तीन प्रकार के व्यंजन तैयार किये, व्यंजन बड़े स्वादिष्ट भी थे। खाते समय सबको यह लगा कि क्या खाया जाय और क्या छोड़ा जाय। ऊपर से सुनंदाका आग्रह। उसकी छत पर ही खाने का प्रबन्ध था। पहले से ही कार्यक्रम उसी ने बनाया था। इसलिए उस दिन सायंकाल सबके संतोष का कारण वही थी। खाना समाप्त होते-होते साढ़े नौ बज गये थे। नागेशरायके यह कहने पर कि छत पर अब सर्दी बढ़ रही है श्रीनिवास,गोपालय्या और माधव बच्चों की लेकर नीचे आ गये। बाकी सब काम निबटा कर औरतें वहीं जम गयीं। खूब चाँदनी खिली थी। परन्तु सामने लैम्पपोस्ट की रोशनी उसके सौन्दर्य को तनिक म्लान कर रही थी। श्रीनिवासराय को सिगरेट की लत थी। गोपालय्या को तंबाकू की और नागेशराय को सुघंनी की। तीनों पान खाने के बाद अपनी-अपनी लत में डूब गये। उसका तीन प्रकार का तंबाकू का सेवन गप-शप का विषय बना। तीनों अपनी-अपनी पसंद के बारे में कह रहे थे। माधव जो इन तीनों के परे था बोला, 'तीनों एक ही हैं। रुप भर अलग-अलग हैं। तीनों ही खराब हैं। इसमें यह अच्छा और वह बुरा कहना ऐसा है जैसे गोवर के अलग-अलग हिस्से करके कहा जाय इसमें बदबू आती और उसमें नहीं।' नागेशराय ने 'जो तीनों को ही नहीं जानता हैं वह क्या कह सकता है ? जरा एक चुटकी ट्राई कर देखिये तो।' कह कर सुंघनी के पुराण का विस्तार से वर्णन किया।

ऊपर छत पर औरतें भी इस प्रकार की गप्पों में लगी थी। सुनंदा ने अपना संतोष व्यक्त करते कहा, 'वरसों बीत गये थे इतने संतोषपूर्वक चाँदनी रात में भोजन किये। इसका भी एक संयोग होता है। बात कहीं से कहीं जा रही थी। प्रत्येक अपने सुख-दुःख को मुक्त हृदय से बता रही थी। पार्वतम्मा बोली, मुझे खाना बनाना सिर दर्द लगता है। बीस वर्ष तक तो रसोइया था। अब इसके रिटायर होने के बाद मेरी नौकरी लगी है। कितनी तकलीफ होती है क्या बताऊँ? खैर वना तो लेता हूँ। ऊब मिटाने को गाना सुनना चाहूँ तो रेडियो इनके कमरे में है। मैंने एक ट्रांजिस्टर लाकर देने की बात कही तो बोले अब पेंशन बन्द हो गयी है। बात-बात पर पेंशन का राग अलापते हैं। बड़ी मुश्किल है।' इस प्रकार उसने अपने ऐश्वर्य का कष्ट बढ़ाचढ़ा कर बताया। कमला को उसमें कोई कष्ट नजर नहीं आया। वह बोली, 'इतनी सुविधा रहते खाना बनाना भी कोई बड़ा काम है? दियासलाई दिखाते ही चूल्हा जल जाता है कष्ट हमारे यहाँ बरसातों में पता चलता है। गीली लकड़ी सुलगते-सुलते दोपहर हो जाती है। कपड़े सूखने का नाम ही नहीं लेते। वह बरसात, यह सर्दी व धुआँ क्या बताऊँ? एक दो नहीं। पर एक बात की सुविधा है ११ वजे ही खाना बन जाना चाहिए ऐसा कोई नियम नहीं। हमारे दोपहर का खाना बड़ी देर से होता है, बाद शाम की भली चलाई। खाया तो खाया, न खाया तो न सही। अब सुनंदा भी बोली, 'खाना पकाना मुझे भी बहुत बड़ा काम नहीं लगता।' रुक्मिणी भी यही बात कहना चाहती थी पर सास के सामने मुँह न खोल सकी। बातचीत का विषय पतियों की ओर मुड़ गया।

पार्वताम्मा अपना बड़प्पन बताते हुए बोली, 'हमारे यहाँ कभी किसी बात पर झड़प नहीं होती। ऐसा ही होना चाहिए, यह जिद् किसी में नहीं। कभी-कभी मुझे ही लगता कि ये ऐसा यह क्यों नहीं कहते हैं? कुछ कहना ही हो तो कह देते हैं जैसे तुम्हारी मर्जी।'

सुनंदा ने अपने परिवार की बात बताते हुए कहा, हमारे यहाँ प्रश्न ही

नहीं उठता। हम दो ही जने हैं। एक दिन उसके कहने के अनुसार हो जाता है और दूसरे दिन मेरे। किसी एक का खास दबाव नहीं।'

कमला ने अपनी बात यूं कही 'हमारे यहाँ ऐसा नहीं। इनके कहने के अनुसार ही सब कुछ होना चाहिए। इनका खाना खतम होने तक मुझे जैसे सूली पर टंगे रहना पड़ता है।' बाद में सुनंदा ने पूछा, 'तुम कुछ बोल ही नहीं रही रुक्मिणी ?'

'बड़े लोगों के बीच में मैं क्या बोलूं ? कह कर वह चुप हो गयी।

कमला बोली, 'चाँदनी बड़ी प्यारी है पर पूर्णिमा जैसी प्यारी नहीं। दो दिन बाद ही पूर्णिमा थी। तभी खाने का प्रबन्ध किया जा सकता था।'

'हाँ, मैंने भी यही सोचा था पर दीदी ने मना कर दिया।'

'क्यों ?'

'यह पूर्णिमा पौष की पूर्णिमा है। उस दिन इनकी बड़ी बेटी गुजरी गई थी। यह उसे भूल नहीं पाती।'

'तो यह बात है बिचारी। कितने दिन हो गये ?'

'इस पूर्णिमा को चार साल पूरे हो जाएंगे। सहज कौतूहल और सहानुभूति से कमला ने पूछा कितनी उमर की थी ?'

'यह सब क्यों पूछती हो ? शादी हुए चार साल बीते थे अच्छा घर और वर देखकर खूब पैसा लगाकर शादी की थी पर भाग्य ही अच्छा न था। कोई क्या कर सकता है ? चिक्कमंगलूर में अब जो सब डिविजनल अफसर है उनसे ब्याही थी।'

'बेचारे। हाल ही में वे हमारे घर आये थे। बहुत ही भले आदमी है घर पर काफी पीने को बुलाया था। आकर उन्होंने स्वयं मुझे नमस्कार किया। बड़े मन वाले आदमी हैं। बड़ी भाग्यशालिनी थी जो ऐसा पति मिला था। उसे तो जीना चाहिए था। क्या हो गया था ? जचगी में क्या ?'

'अगर ऐसा ही जाता तो क्या था ? चाहे जितना भी कष्ट क्यों न होता

एक बच्चा तो रहता, हारी नहीं बीमारी नहीं। अच्छी खासी थी। शाम को खुशी-खुशी गाजनूर के तालाब में नाव की सैर को गयी तो वहीं नाव डूब जाने से पानी की ही भेंट चढ़ गयी। किसी को सपने में गुमान न था कि ऐसा हो जाएगा।'

'हाय राम! कैसा अन्याय! ऐसा यह भी होना चाहिए?' कहकर 'मला दुखी हुई। सचमुच में ही उसका मन सहानुभूति से भर गया था।

'क्या करें हमारा नसीब ही खोटा था' कहकर पार्वतम्मा ने आँखें ंछी।

ऐसे मौके पर कमला को भी कभी की खोयीं अपनी बेटी को भूल जाना असाध्य था। एक दुःख ने दूसरे दुःख को पुट दिया। भर्राए हुए स्वर में बोली—

'कैसी भी कष्ट क्यों न आये स्त्री उसे सहन कर जाती है। कैसा दुःख क्यों न आये झेल जाती। पर पेट जाये बच्चे अगर आँखों के सामने चले जायें तो उस दुःख का क्या ठिकाना? अब माधव बड़ा हो गया है। यह भी बड़ी हो गयी है। जो भी हो पर खोयी हुई उस बच्ची को आज भी याद करती हूँ तो कलेजा मुँह को आता है।

'बच्ची खो गयी थी किस की? सुनंदा ने पूछा।

'मेरी ही दूसरी वाली लड़की?'

'गुम हो गयी?'

'हाँ बहिन क्या किया जा सकता है। आँखों के सामने गुजर जाती तो भी एक तसल्ली थी। उसका क्या हुआ? आज पता तक नहीं चला?

पार्वतम्मा अपना दुःख भूलकर उसकी बात सुनने लगी।

'आपकी बच्ची कब खोयी थी?

'हाय राम। आज २५ वर्ष हो गये। नवरात्रि के उत्सव में तिरुपति गये। भीड़ का कोई ठिकाना न था। एक धर्मशाला में ठहरे थे। पहले ही न दोपहर को दर्शन करके प्रसाद लेकर उस धर्मशाला के बरामदे में ही

लेट गये । कोई गाता बजाता आया । मैं अधनींदी सी थी । मैंने उसे कहा 'यही बैठकर देख, वहाँ जाना नहीं ।' जो भी हो दो ढाई साल की बच्ची ही थी। मुझे नींद आ गई और दस मिनट बाद देखा बच्ची ही न थी । ढूंढ-ढूंढ कर थक गये ।

पार्वतम्मा बिना एक शब्द बोले सुने जा रही थी । सुनंदा पूछा —

'पुलिस में रिपोर्ट नहीं लिखवायी ?'

'सब कुछ किया । आठ दस दिन उसी काम में लगे रहे । उस भीड़-भड़क्के में कौन किसकी सुनता है ? पुलिस में जाकर गिड़गिड़ाये तो बोला बहिन तुम अकेली ही तो ऐसी नहीं हो, यहाँ आठ दस बच्चे गुम हैं । तह-कीकात कर रहे हैं । हम क्या ढूँढना नहीं चाहते ?' कहकर हमसे ही सवाल जवाब करने लगे । वे सब या और कोई क्या कर सकते थे । बच्ची ज्यादा बोलना भी नहीं जानती थी । तुम्हारा नाम क्या है पूछने पर 'शारु' कहती थी । तुम्हारी माँ का नाम पूछते थे तो 'अंगच्ची' कहती थी बाप का नाम पूछने पर 'ऐ' बोलती थी । बहुत पूछताछ और ढूँढने पर नहीं मिली । पर तिरुपति बेंकटरमय्या को हमारा जाना पसंद नहीं आया । दया भी नहीं आयी । सोचकर हम लोग वापस आ गये ।'

'बच्ची का नाम शारदा था क्या ?'

'जी, पर शारु पुकारते थे । मुझे वह अंगच्छी बुलाती थी जैसे मेरा बड़ा बेटा बुलाता है । अंगच्छी-अंगच्छी कहती पल्लू पकड़कर सारा दिन पीछे-पीछे घूमा करती थी ।''

अब तक एकचित्त से कमला की बात सुनने वाली पार्वतम्मा सिसकियाँ लेने लगी । सुनंदा के क्या हुआ बहिन पूछने पर दुख को न रोक पाकर 'हाय राम' कहकर छटपटा गयी ।' 'क्यों ?' दीदी क्या हुआ ?' सुनंदा के बार-बार पूछने पर कमला भी पास आकर, 'मुझे बताना ही नहीं चाहिए था । इन्हें बड़ा दुख लगा ।' अपना दुख पीते हुए बोल पड़ी । तब पार्वतम्मा, 'आप के दुख के मुकाबले में मेरा दुख क्या है ? कौन किसे तसल्ली दे सकता

है ।' कहते हुए उसने अपने को रोका । एक दो मिनट रुककर मैं अब लेट जाती हूँ ।' कह कर उठ गयी ।

अपना दुखड़ा रोकर दूसरों को दुखी नहीं करना चाहिए सोचकर कमला को क्षोभ हुआ ।' बात कहाँ से कहाँ चली गई । मैंने उन्हें यह सब बता कर दुखी कर दिया ।' कहकर वह व्यथित हुई ।

'उनका स्वभाव बहुत कोमल है । दुख को रोक नहीं पाती । वे सदा से ऐसी ही है क्या किया जा सकता है ।

यह कहकर तसल्ली देने पर भी सुनंदा को लगा कि शाम का संतोष भरा कार्यक्रम इस ढंग से समाप्त हुआ । 'हर आदमी अपने-अपने ढंग का होता है । बच्चों वाले एक ढंग से रहते हैं और बिना बच्चों वाले एक तरह । यह सोचते पर भी उसे स्वयं के बच्चे होने का दुख भी कम नहीं हुआ । एक क्षण भर को तो उसने अपने बच्चे न होने का दुख भूलना चाहा था पर बच्चे न होने का दुख बच्चे होने वालों के दुख से बड़ा न लगा ।

नीचे पुरुषों की बातें भी कहाँ से कहाँ जा पहुँची थी । जब औरतें नीचे आ रहीं तो गोपालय्या कह रहे थे ।

'दुख को मानों तो दुख और सुख मानों तो सुख । यह सब हमारे मानने की बातें हैं । मैं आप लोगों की तरह पढ़ा लिखा नहीं, समझदार भी नहीं । पर इतना जरुर कहूँगा अपने आंगन के पेड़ को देखने से लगता है कि वर्षा की घनघोर झड़ी में भी भींगता खड़ा रहता है । सर्दी में सब पत्ते झड़ जाते हैं । और नंगा खड़ा रहता है । फिर चैत मास आते ही कोंपले फूटती हैं । और सजा धजा सा खड़ा हो जाता है । हमारा कहना है कि वह वर्षा और सर्दी में दुख अनुभव करता है । क्या यह हम जान सकते हैं ? हमारी अपनी भी यही बात है । हम दुख-सुख की बात केवल बाह्य दृष्टि से कहते हैं । भीतर घुस कर देखने पर लगता है कुछ भी नहीं है ।' बाकी लोगों ने पता नहीं उनकी बातका क्या अर्थ लगाया, पर चारों बड़े प्रसन्न थे । गोपालय्या ने उस निमन्त्रण के लिए श्रीनिवास राय को धन्यवाद दिया उस पर श्री

निवास बोले, 'यह कौन सा काम है। हम लोग एक ही घर जैसे तो हैं। बस इतना ही तो है कि सबने मिलकर खाना खाया उसके लिए इतनी लम्बी चौड़ी औपचारिकता क्यों ?' इसके बाद उन्होंने अतिथियों को विदा दी।

जिस घर में सदा दो ही जन रहते थे वहाँ इतने लोग आकर संतोष पूर्वक खा पीकर गये। इससे उनके लिए तो यह बहुत ही खुशी का अवसर था। पर सुनंदा के लिए यह बात न थी। उसका मन दीदी के कारण एक प्रकार से व्यग्र था।

: ४७ :

नीचे आकर पार्वतम्मा अपने कमरे में जाकर विस्तर पर पड़ गया। नागेशराय के आने तक मुश्किल से रोका हुआ उसके दुख का प्रवाह उनके आते ही सिसकियों में फूट पड़ा। नागेशराय समझ नहीं पाये। वे घबरा गये। सोचने लगे हो क्या गया ?' क्या हुआ ऐसे क्यों हो गयी ?' कहते वे उसके पास गये। उनकी तसल्ली भरी बातें सुनते ही उसका दुख दुगना हो गया। मुख से बात ही निकल पायी।

'क्या हुआ ? पार्वती किसी ने कुछ कह दिया क्या ?'

'हाय राम।'

'चुपचाप रोती ही जाओगी ? क्या हुआ बताती क्यों नहीं ?'

'हमारी शारदा—'

'उसे याद करके इस तरह रोया जाता है कहीं ?' कितनी पुरानी बात हो गयी, उसे बार-बार याद करने से लाभ ?'

'तब की गयी शारदा आज पूरी तरह चली गयी। कहते हुए वह फिर रोने लगी।'

'तुम क्या कह रही हो? परसों पूर्णिमा है। उसकी याद आ गयी क्या ?'

'यह बात नहीं।'

'तो इतना दुख क्यों ? क्या हुआ ?

'शारदा कमला की बेटी थी।'

'कौन सी कमला तुम क्या कह जा रही हो ?'

'वह पड़ोस की कमला और गोपालय्या की बेटी थी।'

'क्या कहे जा रही हो, यह सच है ?'

'नागेशराय की ध्वनि में दर्द था। पर उसमें एक प्रकार का संतोष भी था। इससे बढ़ कर आश्चर्य था।

'सच है ?'

'किसने बताया ?' कैसे पता चला कि ये ही हैं ?'

'२५ वर्ष पूर्व तिरुपति के मेले में खोई अपनी बच्ची की बात वे बता रही थी।'

'पर यह कैसे पता लगा कि बच्ची यही थी ?'

'तब वह दो ढ़ाई साल की थी। वह कह रही थी उसका नाम शारु था माँ को वह अंगच्ची बुलाती थी। पिता का नाम पूछने पर ऐ कहती थी। अब और क्या चाहिए ? इतनी बात हमने उससे नहीं सुनी थी ? उसी के कारण आगे कृष्ण वाणी और सभी अंगच्ची नहीं बुलाते थे ?'

हाँ, यह सच है। कहते हुए नागेशराय सोचने लगे और बातें याद आने से उन्होंने मान लिया।

'इतना ही नहीं उसकी ठोड्डी के नीचे बांई ओर जले का दाग नहीं था ? वह कैसे जली थी। यह भी उन्होंने बताया था। जब आठ मास की थी तब उसे नहला कर लोबान की धूवां देते समय अंगार की प्लेट वहीं छोड़कर चली गयी थी। नींद में बच्ची ने करवट ली तो एक अंगारा

चिपक गया था। चीखते हुए बच्चे को एकदम उठाकर देखा तो ठोड़ी के नीचे चिनगारी चिपकी दिखाई न दी। अंत में देखने पर चिचगारी ने वह जगह जला दी थी। वह घाव का दाग था।

'तुमने उन्हें यह सब बता दिया ?'

'नहीं। मैं अपने को रोक नहीं पायी। मैं वहाँ से उठ गयी।'

'उन्हे पता नहीं चला ?

'उन्हें कैसे पता लगता ? हमने बताया होता तभी तो पता चलता। खोई हुई बच्ची के बारे में जब वे बता रही थी तो मैं किसी प्रकार अपने को रोकी सुनती रही। मुझे जब पता लगा कि हम जिस बच्ची को लाये वह वही है। —'

'तुम्हें बता देना चाहिए था पार्वती। पता नहीं उन्होंने कितना दुख झेला होगा। अगर तुम बता देती तो थोड़ी सी तसल्ली हो जाती।

'कैसी तसल्ली। वह जिंदा रहती तो एक बात थी। उनको बताना पड़ेगा कि वह मर गयी। तो और भी दुखदायक है।'

'हमारी बच्ची का क्या हुआ यह सोच सारी जिंदगी तड़पने वालों को उनकी बच्ची कहीं एक घर में बढ़ी, अच्छे घर गयी, किसी आकस्मिक घटना में मर गयी। यह जानने पर थोड़ी तसल्ली नहीं होती ? तुम्हें उन्हें बता देना चाहिए था। बेचारी उनके दुख के मुकाबले में हमारा दुख क्या ? जो भी हो वह जन्म देने वाली माँ है।'

यहाँ आने के दूसरे दिन ही मुझें कुछ शक सा हुआ था। जब मैंने उनकी कुमुद को देखा तभी लगा शादी के समय में शारदा ऐसी ही थी बिलकुल वैसी ही है। इसे देखो तो ऐसा लगता है मानो शारदा ही हो। पर यह सोचकर चुप हो गया कि कोई दूसरा भी किसी की तरह का हो सकता है। पर यह सब सुनकर तो अब संदेह ही नहीं रहा।'

'मैं अभी जाकर बता आता हूँ पार्वती। वे अभी सोये नहीं होंगे।'

'नहीं।'

उसका दृढ़ स्वर से नागेशराय चकित हुए उन्हें लगा यह कैसा स्वार्थ है, परन्तु उनका मन शारदा के माता पिता के लिए सहानुभूति से भर उठा था। उनकी पत्नी अपने दुख को भूल कर दूसरे विचारों में डूब गयी। वे बोले—

तुम कैसी बात कह रहीं हो पार्वती ?

'उनका दुख मैं समझ सकती हूँ। जब वे बता रही थी तब हम दोनों का दुख बढ़ता जा रहा था। आप के कहने के मुताबिक यदि हम सही बात उन्हें बता दे तो उन्हें एक प्रकार की तसल्ली हो सकती है। पर क्या हर बात उन्हीं की दृष्टि से सोची जा सकती है। हमें अपनी दृष्टि से सोचना नहीं चाहिए ?

'हमारी दृष्टि से क्या सोचना है ?'

'अब तक हमने किसी को बताया नहीं।'

'क्या बताना था ?'

''शारदा हमारी अपनी बच्ची नहीं हमने उसे पाला था।'

'बताने की क्या आवश्यकता थी। यह न जानते हुए कि वह किसकी बेटी है यदि हम बता देते तो क्या उसे इस तरह पाला जा सकता था। उसकी शादी हो सकती थी ?'

'अब बताने पर भी ऐसा ही होगा।'

'किसी के बच्चे को हम जान बूझकर उठा कर नहीं लाये थे। बच्ची राह पर भटक कर रो रही थी। उसको पूछने वाला कोई नहीं था। उसे हम सहानुभूति से ले आये। अपने घर में रखने की नीयत से उठाकर नहीं लाये। दस जगह पूछताछ की। कहीं कुछ पता नहीं लगा। कोई यह नहीं कह सकता कि हमने किसी को धोखा दिया।'

'कोई भले ही न कहे पर अरविंद तो जरुर कहेगा।'

'क्या कहेगा ?

'यह कहेगा कि एक अनजान बच्ची को अपनी कहकर लुका छिपा कर

उससे शादी कर दी।'

'अब वह मर चुकी है।'

'तो क्या हुआ ? तब का बोला हुआ झूठ तो मरा नहीं। 'यदि अब हम सच बात बता दें तो। यह स्वीकार करना हुआ कि तब हमने झूठ बोला था।'

'यह ठीक है। पर अब सच तो पता चल गया।'

'पर इससे आप यह सोचते हैं कि वह मनमें कुछ नहीं सोचेगा।'

'सचमुच। उसे हमने अपनी बेटी की तरह पाला था। उसके मरने के बाद भी उसे याद करके आज तक रो रहे हैं। क्या यह अरविंद को पता नहीं। हो सकता है वह कुछ कहे। पर यह हमारी सच्चाई का प्रश्न है। बच्ची की भलाई के लिए ले आये और तबसे अब तक उसकी भलाई के लिए ही सब काम किया। हमने कौन सी बुराई की ? सच्चाई पता चल जाने पर भी यदि हम न बताए तो यह एक अपराध होगा। इसके अलावा किस कारण न बताया जाय ?'

'आप जो भी कहिए अरविंद हमसे दूर हो जाएगा।'

'अब भी दूर ही है। जिस दिन शारदा गयी उसी दिन दूर हो गया।'

''ऐसा कहने से कैसे चलेगा ?'

'हम जो चाहे कहे बात तो यही है। जब कभी शहर आता है तो मिल जाता है। तो क्या इतने भर से ही यह कहा जा सकता है कि वह पहले जैसा ही है। वह संबंध वहीं समाप्त हो गया। अब तो बचा है वह है याद, और स्नेह, बस इतना ही।'

'वाणी को उसी को देकर पुराना संबंध बचाया नहीं जा सकता ?'

हम केवल ऐसा सोच सकते हैं, वह हमारी इच्छा है। पर मुझे भरोसा नहीं कि ऐसा होगा। छिपना मेरे बस का काम नहीं। अपने स्वार्थ के लिए गोपालय्या के प्रति अन्याय और अरविंद से छिपाव। इतना करने पर भी

मुझे तिल भर विश्वास नहीं कि वह मान जाएगा। एक बार को वह मान भी जाय तो वाणी भी मान लेगी, मुझे ऐसा नहीं लगता। सचमुच कहता हूँ।

'कभी उसने ऐसा कहा ?'

'कहने की क्या जरुरत है ? यदि उसका मन होता तो उस दिन जब अरविंद आया था तो उससे मिलने सें बचता नहीं। वह भी जब कि उसके आने का पहले से पता था।'

'उसने कहा था कहीं फंस गयी थी समय पर आ नहीं पायी।'

'वही सच है। कहीं फँस गयी थी...

'इसका मतलब- - - -'

'उस सबकी अब जरुरत नहीं जब लौटेगी तब अपने आप पता चल जाएगा।'

'बताते क्यों नहीं ?'

'अभी कहा नहीं जा सकता कि ऐसा ही है। देखेगें, पर यह सच है कि वह अरविंद को पसन्द नहीं करती। अब तुम्हें उसकी उम्मीद नहीं रखनी चाहिए।'

'तो क्या दोनों लड़कियां हाथ से निकल गयीं ?'

यह कहकर वह फिर सें रो दी। जिसे पाला वह मर गयीं। जिसे जन्म दिया वह बात नहीं मानती। इससें उसका दुख दुगुना हो गया। नागेशराय उसे बार बार तसल्ली देते हुए बोले- - - -' ऐसा ही होना चाहिए। जब जो जिद पकड़ें तो वह पूरी नहीं होती पार्वती। उससें केवल दुख ही बढ़ता है। अपनी समझ के अनुसार काम करते जाना ही हमारे हाथ में होता। बाद में यही सोचकर धैर्य किया जा सकता है। चाहे जो हो जाय ऐसा हो गया और ऐसा होगा सोचकर व्यर्थ में रोते जाने से क्या लाभ ? इस दुनिया में केवल हम ही नहीं रहते।'

बहुत देर के बाद पार्वती को तनिक तसल्ली हुई। परन्तु यह भाव और

दर्द वह भूल नहीं सकी कि कोई अमूल्य वस्तु उनसे खो गयी है। वह अपना दर्द भूलकर सुबह सबको यह बात बताने को सहमत हो गयी। नागेशराय भी यही चाहते थे। उसके मान जाने से और दर्द को सहने के लिए तैयार हो जाने के कारण उन्हें बड़ी तसल्ली हुई। प्रातः तक प्रतीक्षा करना उन्हें कठिन लगा। अंत में अपने को रोक न पाकर श्रीनिवासराय और सुनंदा को जगाकर सारी बातें विस्तार पूर्वक बता कर ही सोने गये।

: ४८ :

सवेरे आठ बजे से पूर्व ही श्रीनिवासराय और नागेशराय को अपने घर आते देखकर बाहर के बरामदे में बैठे गोपालय्या को आश्चर्य हुआ। थोड़ा डर भी लगा। कल रात को पार्वती के उद्विग्न होकर उठकर चले जाने की बात घर लौटते समय कमला ने विस्तार से बतायी थी। इस कारण वे यह सोच ही रहे थे पता नहीं और क्या बात हो गयी ? कहीं उनका स्वास्थ्य और बिगड़ तो नहीं गया ? इतने में वे दोनों आ ही पहुंचे। माधव ने भी उनका भीतर से देखकर यही सोचा। बाहर आकर स्वागत करते हुए बोला, 'आइए, आइए, भीतर आइए।' आगंतुक तनिक गंभीर ही थे।

वे जो कुछ कहने आये थे उसे कैसे शुरु करें यह दोनों के लिए समस्या थी। गोपालय्या और माधव को भी लगा कि दोनों इतने गंभीर क्यों बैठे हैं ? तब नागेशराय ने बोलना शुरु किया।

'हम आपको एक बात बताने आये हैं।'

भीतर से उनकी बात सुनकर कमला ने भी बाहर आकर,

'कल रात पार्वती बड़ी दुखी हो गयी थी। मुझे अपनी उस मनहूस कहानी को सुनाना नहीं चाहिए था। मेरे कारण सभी का संतोष चला गया।' इस प्रकार उन्होंने अपनी व्यथा प्रकट की।

'ऐसा मत कहो बहिन! आपका बताना ही अच्छा रहा। हम लोग इस लिए आये हैं।'

'क्यों पार्वती बहिन की तबीयत ठीक नहीं?'

'वह तो ठीक है। यह बात नहीं पर समझ में नहीं आता कि कैसे कहें?

माधव बोला, 'क्यों सर? क्या बात है?'

'देखो बहिन आपने अपनी बच्ची की बात बताई थी उसे सुनकर उसें पुरानी बातें याद आ गयी। यह सोचकर कि हमने जिस बच्ची को पाला वह आपकी थी।'

गोपालय्या के मुख से बीच ही में—हां—।' निकला।

कमला बात करने की स्थिति में नहीं थी। उसका मन इतना बोखला उठा कि वह समझ न पा रही थी कि वह क्या सुन रही है। आखिर माधव ने कहा—

'आप क्या कह रहे हैं? कौन सर, आपकी पाली हुई बच्ची थी वह शारदा?'

एक पल को किसी के मुख से बात न निकली। उस वातावरण में जितना संतोष था उतना ही दुख भी था। खोयी बच्ची के मिलने से खुश होना चाहिए या बच्ची के पता चलने पर भी वह कभी की मर गयी यह जानकर दुखी होना चाहिए। कमला, गोपालय्या और माधव तीनों की स्थिति एक जैसी ही थी। संतोष और दुख के संघर्ष में दुख की जीत हुई और आँखों से आँसू बहने लगे। माधव के आंखों में खुशी के आँसू थे। गोपालय्या तो सच है या स्वप्न जो भी हो एक ही बात है इस स्थिति में आँखें मूँद कर बैठे थे। अन्त में कमला ने गदगद स्वर में पूछा,

'हमारी बच्ची को आपने पाला ?

'हाँ वहिन, हमने पाला था, अच्छी तरह वड़ा किया, अच्छे घर भी गयी पर बताइए क्या किया जाय उसका भाग्य ही अच्छा न था।'

कमला गला फाड़कर रो पड़ी। माधव पास बैठकर बोला, यह क्या अंगच्ची' कहीं ऐसा करते हैं। हमारी तरफ से तो वह कभी की चली गयी। पर गयी तो कुछ समय तक सुखी रही। यह सुनकर अपने को तसल्ली नहीं करनी चाहिए।'

'बेटा जो हमसे गयी तो सदा को ही चली गयी। कभी एक दिन, कहीं एक जगह उसे मरने से पहले देखना चाहती थी, सोंचतीं शायद देख पाऊँगी, पर बेटा हाय ! मेरी शारु—'

वह माँ की ममता रुदन था। उसे सुनकर सबकी आँखों से आँसू बह आये। गोपालय्या ने भी अपने अंगोछे के किनारे से आँसू पोछे। एक दो मिनट चुप रह कर अन्त में वही बोला—

'आपको बच्ची मिली कैसे ?

'मिलना कैसा, मन्दिर से हम दोनों लौट रहे थे। पास गली में बच्ची जोर से रो रही थी। उस समय कोई झाँकी निकली थी। उसके पीछे-पीछे आने से वह राह भटक गयी थी। जिससे पूछा उसी ने नहीं कहा। उसकी असहाय स्थिति देखी नहीं जाती थी। उसे गोद में उठाकर घर ले आये सोचा कि बाद में पूछ लेगें। बेचारी इतनी थक चुकी थी कि कोई भी उसे गोद ले ले। बेचारी !'

'बाद में ?'

'बच्ची भूखी भी थी। थोड़ा खिला सुला दिया। सो गयी। पता नहीं कितनी देर से धूप में भटक रही थी। जागने पर गोद में लेकर उससे बात की। उसे बात ही कितनी आती थी। तुम्हारा नाम क्या पूछने पर 'शारु' बताती थी। तुम्हारी माँ का नाम क्या है तो 'अंगच्छी' बताया और तुम्हारे बाप का नाम पूछने पर 'ऐ' कहती थी। इससे ज्यादा उसे बातें ही नहीं

आती थी। आस पास सब जगह पूछा, देखिए नवरात्रि का मेला था। भीड़-भड़क्के का ठिकाना न था। रात तक पूछने पर भी पता नहीं चला। दूसरे दिन शाम तक जो भी मिला उससे पूछा, पुलिस में खबर दी। उन्हें अपना ही काम बहुत था। बच्ची को रखने को भी वे तैयार न थे। ऐसी दशा में उसे छोड़ आने का भी मन न हुआ। हमलोग वहाँ केवल दो दिन के लिये गये पर उसे बच्ची के कारण दो दिन और ठहर पूछताछ की कहीं कुछ पता नहीं चला। वापस लौटकर पेपर में दे देने से काम शायद हो जाय सोचकर लौट आये। पेपर में भी छपवाया पर कोई उत्तर न मिला। यही सोचकर चुप हो गये चलो भगवान ने दी है। बच्ची प्यारी है। हमारी भी शादी हुए नौ साल हो गये थे। पर बच्चे न थे। अपनी ही बच्ची समझकर पाला। उसने एक दिन हमें तंग नहीं किया। इससे अंगच्छी बुलाती थी। ऐसे शांत स्वभाव की बच्ची मैंने आज तक नहीं देखी।

जब यह सब बातें हो रही थी पार्वती और सुनंदा आकर चुपचाप कमला के पास बैठ गयी। अपने पैदा होने से ही खो गई दीदी मानों फिर घर आयी हो ऐसी अजीब सी मन की स्थिति में कुमुद कभी यहाँ कभी वहाँ खड़ी होकर बातें सुन रही थी।

गोपालय्या बोले, 'आप भाग्यवान है। बहुत ही बड़ा काम किया आपने। यह सोचना भी कठिन है कि यदि बच्ची आपके हाथ न पड़ती तो उसका क्या बनता।'

'जो कुछ हमारे वश में था वह हमने किया पर, हमारे भाग्य ऐसे कहाँ? अगर वह जिंदा रहती तो हमारा किया सार्थक था। पर एक ही तसल्ली है जितने दिन रही सुख से रही। मात्र इतना ही नहीं उस बच्ची का हमारे घर आना हमारे लिए बड़ा सौभाग्य सिद्ध हुआ। भगवान की कृपा से बाद में मेरे दो बच्चे हुए। १६ वर्ष तक हमारे घर में रही वह समय हमारे लिएं बहुत ही अच्छा था। उसे जीवित रहना चाहिए था पर क्या

किया जा सकता है ? जिसके साथ तभी वह ऐसी अच्छी के साथ जीवन बिताने का भाग्य मेरा नहीं रहा कह कर आज भी कुढता है ।'

'यदि वह जीवित रहती तो आपकी बेटी और दामाद दोनों को आज आपको सौंपती । यह मेरे भाग्य में नहीं था ।' कहते हुए पार्वती ने अपनी आँखें पोंछी ।

'देखना हमारे भाग्य में नहीं था बहिन। क्या किया जाये ।' कमला भी आँखों में आँसू भरकर बोली ।

श्रीनिवासराय बोले, 'आज कल जो चिक्कमगलूर सब डिवीजनल आफिसर है ! न उनको ब्याही थी ।'

तब गोपालय्या ने कहा, 'हाल में तो हमारे गाँव आये थे। बड़े ही सज्जन हैं।

माधव बोला, 'उन्हें भी यह सब बात बतानी चाहिए ।'

'लेकिन उन्हें आज तक पता नहीं कि वह हमारी पाली हुई बच्ची थी। हमने उन्हें यह बात बतायी भी नहीं थी। नागेशराय बड़े संकोच से अपना डर बताया । यह देखकर श्रीनिवासराय बोले,

'यह सब उसकी भलाईके लिए ही किया था अब उस बारे में सोचने से फायदा ।

गोपालय्या ने कहा, तो आप कहते हैं कि उनको बताने की जरूरत ही नहीं ?

'जरूर बताना चाहिए आपके गाँव आये भी थे। मान लो न भी आते तो भी उन्हें ये जरूर बता देना चाहिए कि आप उनके क्या लगते हैं। अपनी असली ससुर को उन्हें पहचानना चाहिए। यह जानकर उन्हें भी संतोष हो सकता है ।'

श्रीनिवासराय की इस बात से सबको संतोष हुआ। आज तक सबकी चिन्ता दूर हो गयी। दुख का बादल छट गया। गोपालय्या ने अपने बेटे को बुलाकर कहा 'सब का मुँह तो मीठा कराओ' फिर नागेशराय बोला ।

'मैंने जीवन में कोई कष्ट महसूस नहीं किया। पर यही एक बात थी जो आज तक भीतर ही भीतर मुझे खाये जा रही थी। मैंने किसी के सामने आज तक मुँह तक नहीं खोला। पर आज बता रहा हूँ। 'बच्ची का क्या हुआ? यह विचार मुझे सदा सताता रहा। आज यह निबट गया। वह भगवान के घर चली गयी। मुझे जो तसल्ली हुई वह मैं बयान नहीं कर सकता। भगवान की कृपा से ही आप के द्वारा यह काम हुआ।' इतना कह पाना ही उसके लिए कठिन हो गया।

तब श्रीनिवास बोले, 'जितना सोचो उतना ही अजीब लगता है। लोग जिसे भगवान की लीला कहते हैं वह क्या यूँही कह दिया जाता है। इसी को भगवान की लीला कहते हैं। कुमुद और माधव वे सब लोगों के लिए मिठाइयाँ और काफी लाये। सब लोगों ने ली।

गोपालय्या ने सोचा मिठाई जितनी मीठी उतनी कड़वी थी और जितनी कड़वी उतनी ही मीठी थी। कैसी कड़वी और कैसी मीठी यह अपनी जबान पर निर्भर करता है।

दोपहर को सबने मिलकर माधव के घर ही खाना खाया। यह निश्चय हुआ कि दूसरे दिन गोपालय्या और माधव चिक्कमंगलूर आएंगे और वेंकटरामय्या को साथ लेकर अरविंद से मिलेंगे। नागेशराय ने 'मेरी गाड़ी ले जाइये, ड्राइवर है।' कहकर यात्रा का काम सरल कर दिया।

: ४६ :

दोपहर के तीन बजे के करीब वेंकटरामय्या अरविंद के घर पहुँचे और नौकर से अपने आने की सूचना देने को कहा। तभी अरविंद सो कर उठा था। उस दिन वह छुट्टी पर था। दोपहर को पुरोहित राम जो इसके घर पर विधिपूर्वक सारा काम निवटा कर भोजन करके आते-आते दस बज गये थे। जागकर मुँह धोकर जब एक पुस्तक लेकर पढ़ने बैठा तो नौकर ने वेंकटरामय्या के आने की सूचना दी।

बैठक मे आकर वह बोली आइए। क्या बात है? इस समय कैसे आये?

'पटवारी गोपालय्या आये हैं आप से मिलना चाहते हैं।'

'क्या बात है? कहाँ हैं वे?'

'बाहर बैठे हैं, उनके बेटे भैया मास्टर भी आये हैं।'

'बाहर क्यों बैठे हैं? भीतर बुलाइए।

अरविंद को जरा अचरज सा लगा। किसलिए आये होंगे यह अनुमान लगाना उसके लिए कठिन था। वेंकटरामय्या स्वयं लेकर आये तो कोई विशेष काम ही होगा। इतने में वेंकटरामय्या उन दोनों को लेकर भीतर आये। अरविंद ने उठकर नमस्कार करते हुए उन्हें सोफे पर बैठने का इशारा किया। बेंकटरामय्या खड़े ही रहे। आप खड़े क्यों हैं? यह तो आफिस नहीं है। कहकर हँसते हुए पूछा, 'क्या बात है इतनी धूप में चले आये?'

'हम लोग करीब ग्यारह बजे यहाँ आये थे।

'अच्छा ? मैं राम जो इसके यहाँ गया था। आपको पता नहीं क्या ?' फिर गोपालय्या की ओर घूम कर पूछा, 'क्या काम था गोपालय्या जी ?'

क्या कहें और क्या करें यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। उसने वेंकटरामय्या की ओर देखा।

'ये आप से एक बात कहने आये हैं।'

'क्या बात है ?'

'बताना मुश्किल हो रहा है। एक तरफ से संतोष की बात है दूसरी ओर दुख की बात है।'

'क्या बात है गोपालय्या जी ?'

'बागूर से लौटने के बाद एक दिन गोपालय्या की बात आने पर मैंने आप से एक बात कही थी। शायद आपको याद होगी। खोयी हुई बच्ची की बात।'

'हाँ, याद आया, आपने कहा था खोयी हुई बच्ची अभी तक मिली नहीं अब उसकी बात कैसे आई ?

'अब···' यह कहकर वेंकटरामय्या तनिक रुके।

'बच्ची मिल गयी क्या ?

'जी हाँ। बच्ची मिल गयी। पर नहीं···'

अरविंद को बात समझ में नहीं आयी।

'मिली पर नहीं यानी ?

'बच्ची को किसने और कहाँ पाला यही पता चला है पर वह नहीं रही।'

'बेचारी। गुजर गयी क्या ?

'वे आप की ही पत्नी थी।'

'अरविंद आश्चर्य से रुक गया। कहने वाला भी वेंकटरामय्या न होता तो शायद वह कह देता कि यह 'क्या बकवास है' पर उन तीनों के मुख न देखने से उसे ऐसा लगा कि बात असाधारण है।'

'इनकी खोयी बच्ची शारदा थी ?'

'जी हाँ ।'

'क्या यह संभव है ? वेंकटरामय्या आप कैसी बात कह रहे हैं ?'

गोपालय्या ने कहा, 'यदि सच नहीं तो हम यहाँ आते ही नहीं । और यहाँ आकर कहने का कोई लाभ भी तो नहीं था। सच पता चलने पर आपको भी बताने के लिए हम यहाँ आये ।'

'पर शारदा तो नागेशराय की बेटी थी ।'

'नागेशराय ने उसे पाला और बड़ा किया था ।'

'मुझे यकीन नहीं आ रहा वेंकटरामय्या ।'

'यकीन करना ही मुश्किल है। पर जैसे कि गोपालय्या ने कहा कि यहाँ तक आकर झूठ बोलने की उन्हें क्या जरुरत थी ? इसके अलावा...'

'अरविंद को वेंकटरामय्या की बात सच लगी । वह मर चुकी है । यदि वह जीवित रहती तो कोई बात भी थी । यह सोचा जा सकता था कि कोई स्वार्थ हो सकता था । सारी बात जानने का कुतूहल हुआ ।

'कैसे पता चला ? किसने बताया ?'

'वेंकटरामय्या और गोपालय्या दोनों ने सारी बातें आदि से अन्त तक बतायी । जब वे एक बात सुना रहे थे तो अरविंद शारदा को ही याद कर रहा था। बीच-बीच में दीवार पर लगे चित्र को देखता जा रहा था। सुबह उस पर डाली फूल माला के फूल अब खिल गये थे। मुख जीवंत सा लगा रहा था। ऐसा लगा मानो वह भी हँसकर उनकी बातें सुनती जा रही है । जब उनकी बातें खतम हुई तो अरविंद इतना खो गया था कि उसे पता ही नहीं चला कि वह कहाँ है और उनसे क्या सुना। वह वास्तव में वहाँ नहीं था। उसे लगा बागूर में दिखा स्वप्न फिर से उसके सामने आ गया है। वह तालाब के किनारे खड़ा है ओस के परदे के उस पार से आकर शारदा कह रही है, 'मैं कहाँ गयी थी ? यही हूँ ।' देखते ही देखते शारदा ओझल हो गयी मयूर नौका में चंपकमाला खड़ी है। जैसे अरविंद

वहाँ जागा था वैसे ही यहाँ भी जाग उठा । पर अब एक और चित्र उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ । पटवारी जी की लड़की हाथ में काफी की ट्रे लिए दरवाजे पर खड़ी है । क्या वही शारदा है ? अरविंद फिर से जाग पड़ा । वह शारदा नहीं । वह पटवारी की लड़की है । हाँ, वह शारदा की बहिन है । अब ये उसी की बात कर रहे हैं । उसके मन के भ्रम वाली बहिन नहीं सचमुच में ही वह शारदा की बहिन है । यह क्या है ? कितना अद्भुत कितना विचित्र ।

उसे आँखें मूँदकर अपने विचारों में डूबा हुआ देखकर वेंकटरामय्या बोले,

'अभी भी विश्वास नहीं हुआ क्या ?'

'अविश्वास कैसे होगा ?' अरविंद का गला रुँध गया था । आगे उसके मुँह से बात नहीं निकल सकी । अपने भावोद्वेग को तनिक रोककर उसने पूछा, 'नागेशराय जी आजकल हासन में हैं ?'

तब माधन्न बोला, 'जी हाँ । उन्हीं की कार में हम यहाँ तक आये हैं ।

'तो…'

अरविंद रुका उसका मन किसी निश्चय की ओर झुक गया था । वह जिस निश्चय पर पहुंचना चाहता था उसमें एक दर्द था । पर एक खुशी भी थी । सोचते-सोचते उसने एक बार मुँह उठाकर शारदा की फोटों की ओर देखा । मानों कुछ पूछ रहा हो । अपने उद्वेग को दबाने के लिए अर-विंद थोड़ी देर को दूसरे कमरे में जाकर लौट आया । वापस आते हुए वह तौलिए से मुँह पोंछ रहा था । रसोइयाँ काफी से गिलास लेकर आ पहुँचा । ऐसा लगा मानो अरविंद किसी निश्चय पर पहुँच गया था ।

'वेंकटरामय्या मैं हासन जाना चाहता हूँ । शारदा के माता जी से मिलकर आऊँगा । आप भी चलिए जल्दी लौट आएँगे ।'

'ऐसी बात है तो मैं जरा आफिस हो आता हूँ ।

'हो आइए । साढ़े चार या पाँच बजे तक चलेंगे । तो ठीक रहेगा ।'

'फिर क्या आज ही लौट आ सकेंगे ?

'वहाँ पहुँचने के बाद इसका फैसला करेंगे ।

'ठीक है । पर मुझे तो घर बताना पड़ेगा । कहते हुए वेंकटरामय्या हँस पड़े ।

उसके उत्तर में अरविंद ने कहा, 'जहाँ तक मेरा विचार है रात तक लौटना तो नहीं होगा । सुबह तक का परमिट ले लीजिए ।'

तब माधव ने कहा, 'हमारा सामान भी वहीं है हम भी साढे चार बजे तक आ जाएँगे ।'

'ठीक है । यही कीजिए । वेंकटरामय्या आज मैं ड्राइव नहीं कर पाऊंगा । इब्राहिम को आने के लिए कहलवा दीजिएगा ।'

'बहुत अच्छा ।' कहकर तीनों चल पड़े । अरविंद दरवाजे पर खड़ा उन तीनों को देखता रहा उसे सब विचित्र लग रहा था ।

इन सबका अनपेक्षित रूप से आना, सब बातें बताना और इसका उनके साथ चलने को तैयार होना । इन सब बातों का मतलब क्या है ? उसे लगा कि उसके जीवन की दिशा ही बदल गयी ।

किसी को इस बारे में स्वप्न में भी गुमान न था । और सब बिना किसी की कानी उँगली उठे ही हो चुका था : अब आगे और क्या-क्या होने वाला है ? यह कैसे हुआ ? किसने कराया तब उसे लगा कि अपने जीवन के समान संसार में करोंडों प्राणियों के जीवन के चराचर के पीछे छिपे एक चैतन्य को अनिर्वचनीय तप से, कल्पनातीत आपने आप से चलाने वाले निगूढ सत्व को याद करने पर उसे लगा कि हम क्या चीज हैं ? वह यह मानने को विवश हो गया; पीछे घूमकर शारदा के चित्र को देखा । वह अनंत शक्ति का एक अगोचर अंग बन कर इसे एक रास्ते पर चलाती रही । अब वह रास्ता दिखा रही सी लगती रही थी । उसने चित्र को इतनी कृतज्ञता की नजर से देखा मानो सुबह की विधि पूर्वक दी गयी श्रद्धांजलि काफी न थी ।

ठीक [illegible] गोपालय्या, माधव और वेंकटरामय्या लौट आये। थोड़ी देर तक यह चर्चा हुई कि कौन किस कार में बठे बाद में यह निश्चय हुआ कि अरविंद अपनी कार में बाकी लोग दूसरी कार में बैठेंगे। अरविंद के साथ बैठने को तैयार वेंकटरामय्या इस विचार से दूसरी कार में बैठा ताकि गोपालय्या के साथ बातचित करता चले। अरविंद भी किसी से बात करने की स्थिति में नहीं था। वह रास्ते भर अपने ही विचारों में खोया रहा। ज्यों ज्यों सोचने लगा उसे डर सा लगा। उसने सोचा-कहाँ से कहाँ तक का चक्कर, बागूर से तिरुपति, तिरुपति से चक्कर काटकर बैंगलूर में उससे मिली फिर वहाँ से चलकर गाजनूर के जल में समा गई। उसने सोचा जैसे ज़ंगल में फूटकर निकल एक झरना स्वर्गधारा के समान बढ़कर, विस्तृत होकर गहराई प्राप्त कर बहता हुआ एकदम एक खाई में जा गिरता है। फिर नदी अपने कोलाहल को निगल कर आगे नहीं बहती? शारदा का जीवन भी ऐसी एक स्वर्ग धारा था। ऐसा शांत गंभीर प्रवाह था। वह मृत्यु की गोद में जो गिरा यह कैसे माना जाय कि वह आगे नहीं बहेगा। हमारी आँखों से न दिखे तो क्या हुआ? वह प्रत्यक्ष लोक से अप्रत्यक्ष लोक में चला गया। अज्ञात से अज्ञेय की यात्रा है वह। इसे केवल स्थित्यांतर मात्र कहना है। लोगों का कहना हैं कि चंपकमाला की नौका यदा कदा आज भी ऊपर आती है। वह विश्वास इतना साधारण नहीं।

एक के बाद एक चलकर दोनों कारें हासन में श्रीनिवासराय के घर के सामने रुकी तो आठ बज चुके थे। एक साथ दो कारों का आना देखकर दोनों घरों के लोग बाहर आये। नागेशराय को तो अरविंद के आने की पूरी आशा थी। उन्होंने घर में कई बार कहा भी था कि वह जरुर आएगा। कारों का आना देखकर उनका कहना सच निकला सोचकर खुशी से उन्होंने अरविंद का स्वागत किया। श्रीनिवासराय ने भी आगे आकर स्वागत किया।

गोपालय्या और माधव की खुशी का तो कोई ठिकाना नहीं था। उन्होंने घर में घुसते ही कहा, 'वे भी आये हैं।' वेंकटरामय्या ने भीतर जाकर सामने खड़ी कमलय्या को नमस्कार किया। तब उसने

'आओ भैया, आओ। आप अच्छे मुहूर्त में बागूर आये थे। यदि आप न आते.........।

'अच्छे काम के लिए मुहुर्त सदा अच्छा ही होता है। यदि मैं न भी आता मुहूर्त नहीं टलना था और किसी ढंग से हो ही जाता। बस यही बात है जो भी हुआ अच्छा ही हुआ।

'पता नहीं क्या अच्छा है। मुझे तो कुछ भी समझ में नहीं आता है।'

'भाग्य का खेल ऐसा ही होता है।'

'एक मिनट रुकने के बाद में कमलय्या ने पूछा

'लगता है वे भी आये हैं ?

'जी हाँ, जब हमने सब बातें बताईं तो कहने लगे कि इसी समय जाकर आपसे मिलना है। इसीलिए वे आये हैं।

'बहुत ही ऊँचे विचार के हैं। उस दिन बागूर में ही देखा था। उन्होंने मुझे कैसे नमस्कार किया था। उसे मैं भूल नहीं सकती।'

इतने में माधव अरविंद के आने की प्रतीक्षा में आगंतुकों के बैठने की व्यवस्था कर रहा था। घर में एक ही कुर्सी थी जिसे उसने दीवार के पास रख दी थी। उस तरफ दरी बिछाया। रसोई के दरवाजे के पास कमलय्या बैठी थी। गोपालय्या के साथ वेंकटरामय्या बाहर बरामदे में प्रतीक्षा कर रहे थे। वेंकटरामय्या ने कहा, 'यहीं लिवाकर ला सकते थे।' तब गोपालय्या बोले, 'मैं बुलाना ही चाहता था। पर नगेशराय दरवाजे पर ही खड़े थे।'

अगले दस मिनट में श्रीनिवासराय के साथ अरविंद आ पहुंचा। गोपालय्या ने द्‌वार पर ही आदर से स्वागत किया। पीछे पीछे नागेशराय और उनकी पत्नी भी आई। अरविंद आकर अपने लिए रखी कुर्सी पर बैठ गया। माधव यदि बहुत जोर नहीं देता तो वह दरी पर ही बैठना चाहता था। क्या बात करे समझ में नहीं आ रहा था। सबकी स्थिति ऐसी ही थी। अंत में नारवता को न सहनकर पाने पर वही बोला,'

'कुछ समझ में नहीं आता कि क्या कहूँ। आज दोपहर को इन्होंने सब बताया। सब सुनने के बाद यहाँ आने की इच्छा हुई। चला आया।'

'बड़ी खुशी हुई बेटा, बड़ी खुशी·········

कमला से इतना कहना भी कठिन हो गया। उनका गला भर आया था। उमड़ते आँसूओं को उन्होंने पल्लू से पोंछा।

'अब आप क्यों रोती हैं? रोयेंगी तो सबको रोना आयेगा। उससे फायदा भी क्या? यह मुझे आप से कहना पड़ेगा?"

'आंखों से देखने का भाग्य हमें नहीं मिला'

'ऐसा न कहिए। ऐसा कहने की जरुरत भी नहीं है। आप की शारदा आपके घर में ही है। वह नहीं है ऐसा मैं कभी कह नहीं सकता।'